जैनधर्म की कहानियाँ

(उपसर्गजयी श्री सुकुमाल मुनिराज)

भाग- 22

प्रकाशक

अखिल भा. जैन युवा फैडरेशन–खैरागढ़

श्री कहान स्मृति प्रकाशन–सोनगढ़

श्री खेमराज गिड़िया
जन्म : 27 दिसम्बर, 1918
देहविलय : 4 अप्रेल, 2003

श्रीमती धुड़ीबाई गिड़िया
जन्म : 1922
देहविलय : 24 नवम्बर, 2012

आप दोनों के विशेष सहयोग से सन् १९८८ में **श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया** ग्रन्थमाला की स्थापना हुई, जिसके अन्तर्गत प्रतिवर्ष धार्मिक साहित्य एवं पौराणिक कथाएँ प्रकाशित करने की योजना का शुभारम्भ हुआ। इस ग्रन्थमाला के संस्थापक श्री खेमराज गिड़िया का संक्षिप्त परिचय देना हम अपना कर्तव्य समझते हैं –

जन्म : सन् १९१८ चांदरख (जोधपुर)
पिता : श्री हंसराज, **माता :** श्रीमती मेहंदीबाई

शिक्षा/व्यवसाय : प्रायमरी शिक्षा प्राप्त कर मात्र १२ वर्ष की उम्र में ही व्यवसाय में लग गए।
सत्-समागम : सन् १९५० मेंपूज्य श्रीकानजीस्वामी का परिचय सोनगढ़ में हुआ।

ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा : सन् १९५३ में मात्र ३४ वर्ष की आयु में पूज्य स्वामीजी से सोनगढ़ में अल्पकालीन ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा लेकर धर्मसाधन में लग गये।

विशेष : भावनगर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में भगवान के माता-पिता बने।

सन् १९५९ में खैरागढ़ में दिग. जिनमंदिर निर्माण कराया एवं पूज्य गुरुदेवश्री के शुभहस्ते प्रतिष्ठा में विशेष सहयोग दिया।

सन् १९८८ में ७० यात्रियों सहित २५ दिवसीय दक्षिण तीर्थयात्रा संघ निकाला एवं व्यवसाय से निवृत्त होकर अधिकांश समय सोनगढ़ में रहकर आत्म-साधना करते थे।

हम हैं आपके बताए मार्ग पर चलनेवाले

पुत्र : दुलीचन्द, पन्नालाल, मोतीलाल, प्रेमचंद एवं समस्त गिड़िया कुटुम्ब।

पुत्रियाँ : ब्र. ताराबेन एवं ब्र. मैनाबेन।

श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रंथमाला का ३० पुष्प

जैनधर्म की कहानियाँ

(उपसर्गजयी श्री सुकमाल चरित्र)

(भाग - २२)

संकलक :

श्री प्रेमचंद जैन, खैरागढ़

सम्पादक :

पण्डित रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर

प्रकाशक :

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन, खैरागढ़ – ४९१ ८८१

मो. ९४२४१११४८८

और

श्री कहान स्मृति प्रकाशन, कहान रश्मि, सोनगढ़

मो. ८६१९९७५९६५/९४१४७१७८१६

प्रस्तुत संस्करण - १००० प्रतियाँ कुल : २१०० प्रतियाँ
दशलक्षण पर्व, (सितम्बर, २०२४)

न्यौछावर : 15 रुपये मात्र

❀ अनुक्रमणिका ❀

1.	भोगी से योगी (सुकमाल चरित्र)	9
I	तीव्र कषाय का फल	19
II	धर्मेण हीन: पशुभि: समान:	24
III	पाँच पाप का फल	27
IV	विपरीत मान्यता सत्य स्वीकार नहीं करने देती	37
V	कहानी में कहानी (सुकुमाल मुनि के पूर्वभव पर आधारित)	44
2.	सङ्गति कीजे साधु की....(शकटाल मुनि पर आधारित)	53
◀	दो साधर्मी	56
3.	रत्नत्रय की उपासना (मल्लिनाथ का पूर्वभव प्रसंग)	57
I	रत्नत्रय की उपासना (राजा वैश्रमण का वैराग्य)	62
4.	सुबह का भटका...शाम को...(नागदत्त सेठ मुनि बना)	66
◀	शत्रुञ्जय पर्वत पर पाँच पाण्डव	71
5.	जैसी करनी... वैसी भरनी ! (धनश्री की कथा)	72
6.	मृगध्वज और भैंसा (पाड़ा)	78
◀	इसमें मेरा क्या है ?	80

❀ प्राप्ति स्थान ❀

१. **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट,** ए-४, बापूनगर, जयपुर-३०२०१५
२. **पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट, देवलाली**
कहाननगर, वेलतगांव रास्ता, लामरोड, देवलाली, नासिक-४२२ ४०१
३. **तीर्थधाम मंगलायतन,** पो.- सासनी-२०४ २१६ जिला- हाथरस (उ.प्र.)
४. **श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट,** आचार्य कुन्दकुन्द नगर,
सोनागिर सिद्धक्षेत्र-४७५ ६८५, जिला-दतिया (म.प्र.)
५. **श्री रमेशचंद जैन, जयपुर** मो. ८६१९९ ७५९६५, ९४१४७१७८१६

प्रकाशकीय

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी द्वारा प्रभावित आध्यात्मिक क्रान्ति को जन-जन तक पहुँचाने में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर के डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल का योगदान अविस्मरणीय है, उन्हीं के मार्गदर्शन में अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन की स्थापना की गई है। फैडरेशन की खैरागढ़ शाखा का गठन २६ दिसम्बर, १९८० को पण्डित ज्ञानचन्दजी, विदिशा के शुभ हस्ते किया गया। तब से आज तक फैडरेशन के सभी उद्देश्यों की पूर्ति इस शाखा के माध्यम से अनवरत हो रही है।

इसके अन्तर्गत् स्वामीजी का सी. डी.व सामूहिक स्वाध्याय, पूजन, भक्ति आदि दैनिक कार्यक्रमों के साथ-साथ साहित्य प्रकाशन, साहित्य विक्रय, श्री वीतराग विद्यालय, ग्रन्थालय, मासिक विधान आदि गतिविधियाँ उल्लेखनीय हैं; साहित्य प्रकाशन के कार्य को गति एवं निरंतरता प्रदान करने के उद्देश्य से सन् १९८८ में श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रन्थमाला की स्थापना की गई।

इस ग्रन्थमाला के परम शिरोमणि संरक्षक सदस्य ५१००१/- में, शिरोमणि संरक्षक सदस्य ३१००१/- में तथा परम संरक्षक सदस्य २१००१/- संरक्षक सदस्य ११००१/- में एवं परम सहायक सदस्य ५००१/- बनाये जाते हैं, जिनके नाम प्रत्येक प्रकाशन में दिये जाते हैं।

पूज्य गुरुदेव के अत्यन्त निकटस्थ अन्तेवासी एवं जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन उनकी वाणी को आत्मसात करने एवं लिपिबद्ध करने में लगा दिया – ऐसे ब्र. हरिभाई का हृदय जब पूज्य गुरुदेवश्री का चिर-वियोग (वीर सं. २५०६ में) स्वीकार नहीं कर पा रहा था, ऐसे समय में उन्होंने पूज्य गुरुदेवश्री की मृत देह के समीप बैठे-बैठे संकल्प लिया कि जीवन की सम्पूर्ण शक्ति एवं सम्पत्ति का उपयोग गुरुदेवश्री के स्मरणार्थ ही खर्च करूँगा। तब श्री कहान स्मृति प्रकाशन का जन्म हुआ और एक के बाद एक गुजराती भाषा में सत्साहित्य का प्रकाशन होने लगा, लेकिन अब हिन्दी, गुजराती दोनों भाषा के प्रकाशनों में श्री कहान स्मृति प्रकाशन का सहयोग प्राप्त हो रहा है, जिसके परिणाम स्वरूप नये-नये प्रकाशन आपके सामने हैं।

साहित्य प्रकाशन के अन्तर्गत् जैनधर्म की कहानियाँ भाग १ से ३१ तक एवं लघु जिनवाणी संग्रह : अनुपम संग्रह, चौबीस तीर्थंकर महापुराण (हिन्दी-गुजराती), पाहुड़ दोहा-भव्यामृत शतक-आत्मसाधना सूत्र, विराग सरिता तथा लघुतत्त्वस्फोट, अपराध क्षणभर का (कॉमिक्स) – इसप्रकार ४१ पुष्पों में लगभग ७ लाख ३४ हजार से अधिक प्रतियाँ प्रकाशित होकर पूरे विश्व में धार्मिक संस्कार सिंचन का कार्य कर रही हैं।

प्रस्तुत संस्करण में सुकुमाल मुनिराज सहित अन्य भी अनेक प्रेरक कथा प्रसंग विशेष रूप से दिए गये हैं। जो सभी पं. प्रेमचंद जैन ने कथा साहित्य में से संकलित किये हैं। इसका सम्पादन पं. रमेशचंद जैन शास्त्री, जयपुर ने किया है। जिन ग्रंथों का आधार बना कर यह कृति तैयार की गई है, हम उन सभी सहित, पण्डित द्वय के भी आभारी हैं।

इन कथा-कहानियों का लाभ बाल युवा वृद्ध सभी वर्ग के लोग ले रहे हैं, यही इनकी उपयोगिता तथा आवश्यकता को सिद्ध करती है। इसी कारण इनकी निरन्तर मांग बनी हुई है। आशा है इसका स्वाध्याय कर सभी पाठक गण अवश्य ही बोध प्राप्त कर सन्मार्ग पर चलकर अपना जीवन सफल करेंगे।

साहित्य प्रकाशन फण्ड, आजीवन ग्रन्थमाला परमशिरोमणि संरक्षक, शिरोमणि संरक्षक, परमसंरक्षक एवं संरक्षक सदस्यों के रूप में जिन महानुभावों का सहयोग मिला है, हम उन सबका भी हार्दिक आभार प्रकट करते हैं, आशा करते हैं कि भविष्य में भी सभी इसी प्रकार सहयोग प्रदान करते रहेंगे।

विनीत:

मोतीलाल जैन
अध्यक्ष

पं. अभय जैन शास्त्री
साहित्य प्रकाशन प्रमुख

पुस्तक प्राप्ति, सहयोग राशि एवं बिल भुगतान शांतिनाथ दिगम्बर जैन मंदिर ट्रस्ट, खैरागढ़ के नाम से भारतीय स्टेट बैंक, खैरागढ़ खाता क्रमांक 10743382296 IFSC-SBIN0000524 में जमा कराके, निम्न मो. नं. 9424111488 पर सूचना देकर रसीद प्राप्त कर सकते हैं।

विनम्र आदराञ्जली

जन्म
१/१२/१९७८
(खैरागढ़, म.प्र.)

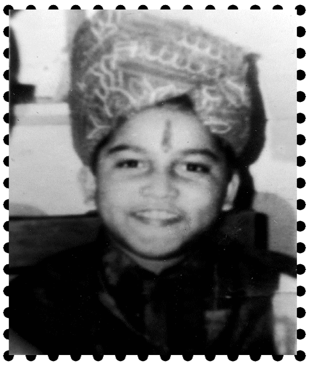

स्वर्गवास
२/२/१९९३
(दुर्ग पंचकल्याणक)

स्व. तन्मय (पुखराज) गिड़िया

अल्पवय में अनेक उत्तम संस्कारों से सुरभित, भारत के सभी तीर्थों की यात्रा, पर्वों में यम-नियम में कट्टरता, रात्रि भोजन त्याग, टी.वी. देखना त्याग, देवदर्शन, स्वाध्याय, पूजन आदि छह आवश्यक में हमेशा लीन, सहनशीलता, निर्लोभता, वैरागी, सत्यवादी, दान शीलता से शोभायमान तेरा जीवन धन्य है।

अल्पकाल में तेरा आत्मा असार-संसार से मुक्त होगा (वह स्वयं कहता था कि मेरे अधिक से अधिक ३ भव बाकी हैं।) चिन्मय तत्त्व में सदा के लिए तन्मय हो जावे – ऐसी भावना के साथ यह वियोग का वैराग्यमय प्रसंग हमें भी संसार से विरक्त करके मोक्षपथ की प्रेरणा देता रहे - ऐसी भावना है।

हम हैं

दादा	स्व. श्री कंवरलाल जैन	**दादी**	स्व. मथुराबाई जैन
पिता	श्री मोतीलाल जैन	**माता**	श्रीमती शोभादेवी जैन
बुआ	श्रीमती ढेलाबाई	**फूफा**	स्व. तेजमाल जैन
जीजा	श्री शुद्धात्मप्रकाश जैन	**जीजी**	सौ. श्रद्धा जैन, विदिशा
जीजा	श्री योगेशकुमार जैन	**जीजी**	सौ. क्षमा जैन, धमतरी

ग्रन्थमाला सदस्यों की सूची

परमशिरोमणि संरक्षक सदस्य

श्रीमती सूरजबेन अमुलखभाई सेठ, मुम्बई
एक मुमुक्षु परिवार दादर ह. जयसुखभाई खाटड़ीया
पारसमल महेन्द्रकुमार जैन, ह. सरिता बेन तेजपुर
श्री निर्मलजी बरडिया स्मृति ह. प्रभा जैन राजनांदगांव

शिरोमणि संरक्षक सदस्य

श्री हेमल भीमजी भाई शाह, लन्दन
श्री विनोदभाई देवसीभाई कचराभाई शाह, लन्दन
श्री स्वयं शाह ओस्त्रो ह. शीतल विजेन, लन्दन
श्रीमती ज्योत्सना बेन विजयकान्त शाह, अमेरिका
श्रीमती मनोरमादेवी विनोदकुमार, जयपुर
पं. श्री कैलाशचन्द पवनकुमार जैन, अलीगढ़
श्री जयन्तीलाल चिमनलाल शाह ह. सुशीलाबेन अमेरिका
श्रीमती सोनिया समीत भायाणी प्रशांत भायाणी, अमेरिका
श्रीमती ऊषाबेन प्रमोद सी. शाह, शिकागो
श्रीमती कुसुमबेन चन्द्रकान्तभाई शाह, मुलुण्ड

परमसंरक्षक सदस्य

झनकारीबाई खेमराज बाफना चेरिटेबल ट्रस्ट,खैरागढ़
मीनाबेन सोमचन्द भगवानजी शाह, लन्दन
श्री अभिनन्दनप्रसाद जैन, सहारनपुर
श्रीमती ज्योत्सना महेन्द्र मणीलाल मलाणी, माटुंगा
ब्र. कुसुम जैन, कुम्भोज बाहुबली
श्रीमती पुष्पलता अजितकुमारजी, छिन्दवाड़ा
सौ. सुमन जैन जयकुमारजी जैन डोगरगढ़
स्व. मनहरभाई ह. अभयभाई इन्द्रजीतभाई, मुम्बई
श्री निलय ढेढिया, पार्ला मुम्बई
श्री कुन्दकुन्द कहान जैन तत्त्वप्रचार समिति, दादर
पीनल बेन प्रकाशभाई संघवी, घाटकोपर
मीताबेन परिवार बोरीबली
श्रीमती समता-अमितकुमार जैन, कानपुर
श्रीमती पुष्पा बेन रायसीभाई गाड़ा, घाटकोपर
धरणीधर हीराचंद दामाणी, सोनगढ़
श्रीमती रीमा-विकाश सेठी अंधेरी ह. बेलाबेन सोनी

संरक्षक सदस्य

श्रीमती शान्तिदेवी कोमलचंद जैन, नागपुर
श्रीमती पुष्पाबेन कांतिभाई मोटाणी, बम्बई
श्रीमती हंसुबेन जगदीशभाई लोदरिया, बम्बई
श्रीमती लीलादेवी श्री नवरत्नसिंह चौधरी, भिलाई
श्रीयुत प्रशान्त-अक्षय-सुकान्त-केवल, लन्दन
श्रीमती पुष्पाबेन भीमजीभाई शाह, लन्दन
श्री सुरेशभाई मेहता, बम्बई एवं श्री दिनेशभाई, मोरबी
श्री महेशभाई, बम्बई, प्रकाशभाई मेहता, राजकोट
श्री रमेशभाई नेपाल, श्री राजेशभाई मेहता, मोरबी
श्रीमती वसंतबेन जेवंतलाल मेहता, मोरबी
स्व.हीराबाई, हस्ते-श्री प्रकाशचंद मालू, रायपुर
श्रीमती चन्द्रकला प्रेमचन्द जैन, खैरागढ़
स्व. मथुराबाई कँवरलाल गिड़िया, खैरागढ़
श्रीमती कंचनदेवी दुलीचन्द जैन गिड़िया, खैरागढ़
दमयन्तीबेन हरीलाल शाह चैरिटेबल ट्रस्ट, मुम्बई
श्रीमती रूपाबैन जयन्तीभाई ब्रोकर, मुम्बई
श्री जम्बूकुमार सोनी, इन्दौर
श्रीमती स्नेहलता ध.प. जैनबहादुरजी जैन, कानपुर
श्रीमती विमलाबाई सुरेशचंद जैन, कोलकाता
स्व. अमराबाई-घेवरचंद ह. नरेन्द्र डाकलिया, नांदगांव
श्रीमती सुशीला बेन सुरेशभाई शाह, अहमदावाद
श्रीमती सुशीलाबाई उत्तमचंद गिड़िया, रायपुर
श्री बाबूलाल तोताराम लुहाड़िया, भुसावल
श्री तुषार नलिनकांत देसाई, पालड़ी
श्री ज्योत्सना बेन भूपतभाई शाह, देवलाली
श्री ज्ञानचंद जैन, दिल्ली
श्रीमती रसिला बेन हंसमुख भाई शाह, अमेरिका

परम सहयोगी सदस्य

श्रीमती शोभादेवी मोतीलाल गिड़िया, खैरागढ़
श्रीमती ढेलाबाई तेजमाल नाहटा, खैरागढ़
श्री शैलेषभाई जे. मेहता, नेपाल
ब्र. ताराबेन ब्र. मैनाबेन, सोनगढ़
श्रीमती चन्द्रकला गौतमचन्द बोथरा, भिलाई
श्रीमती गुलाबबेन शांतिलाल जैन, भिलाई
श्रीमती राजकुमारी महावीरप्रसाद सरावगी, कलकत्ता
श्रीमती ममता-रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर
श्री प्रफुल्लचन्द संजयकुमार जैन, भिलाई
स्व. लुनकरण, झीपुबाई कोचर, कटंगी
श्रीमती पुष्पाबेन चन्दुलाल मेघाणी, कलकत्ता

स्व. कंकुबेन रिखबदास जैन ह. शांतिभाई, बम्बई
एक मुमुक्षुभाई, ह. सुकमाल जैन, दिल्ली
स्व. रामलाल पारख, ह. नथमल नांदगांव
श्रीमती जैनाबाई, भिलाई ह. कैलाशचन्द शाह
सौ. रमाबेन नटवरलाल शाह, जलगाँव
श्री फूलचंद विमलचंद झांझरी, उज्जैन
श्रीमती पतासीबाई तिलोकचंद कोठारी, जालबांधा
श्री छोटालाल केशवजी भायाणी, बम्बई
श्रीमती जशवंतीबेन बी. भायाणी, घाटकोपर
स्व. भैरोदान संतोषचन्द कोचर, कटंगी
श्री तखतराज कांतिलाल जैन, कलकत्ता
श्रीमती सुधा सुबोधकुमार सिंघई, सिवनी
गुप्तदान, हस्ते – चन्द्रकला बोथरा, भिलाई
सौ. कमलाबाई कन्हैयालाल डाकलिया, खैरागढ़
श्री सुगालचंद विरधीचंद चोपड़ा, जबलपुर
श्रीमती सुनीतादेवी कोमलचन्द कोठारी, खैरागढ़
श्रीमती स्वर्णलता राकेशकुमार जैन, नागपुर
श्रीमती कंचनदेवी पन्नालाल गिड़िया, खैरागढ़
श्री शान्तिकुमार कुसुमलता पाटनी, छिन्दवाड़ा
श्री छीतरमल बाकलीवाल, जैन ट्रेडर्स, पीसांगन
श्री किसनलाल देवड़िया ह. जयकुमारजी, नागपुर
श्री सुदीपकुमार गुलाबचन्द, नागपुर
सौ. शीलाबाई मुलामचन्दजी, नागपुर
सौ. मोतीदेवी मोतीलाल फलेजिया, अहमदाबाद
समकित महिला मंडल, डोंगरगढ़
श्री दि. जैन मुमुक्षु मण्डल, सागर
सौ. शांतिदेवी धनकुमार जैन, सूरत
श्री चिन्द्रूप शाह, ह. श्री दिलीपभाई बम्बई
स्व. फेफाबाई पुसालालजी, बैंगलोर
ललितकुमार डॉ. श्री तेजकुमार गंगवाल, इन्दौर
स्व. नोकचन्दजी, ह. केशरीचंद सावा सिल्हाटी
कु. वंदना पन्नालालजी जैन, झाबुआ
कु. मीना राजकुमार जैन, धार
सौ. वंदना संदीप जैनी ह.कु. श्रेया जैनी, नागपुर
सौ. केशरबाई ध.प. स्व. गुलाबचन्द जैन, नागपुर
जयवंती बेन किशोरकुमार जैन
श्री मनोज शान्तिलाल जैन
श्रीमती शकुन्तला अनिलकुमार जैन, मुंगावली
इंजी.आरती पिता श्री अनिलकुमार जैन, मुंगावली
श्रीमती पानादेवी मोहनलाल सेठी, गोहाटी
श्रीमती माणिकबाई माणिकचन्द जैन, इन्दौर
श्रीमती भूरीबाई स्व. फूलचन्द जैन, जबलपुर
श्री किशोरकुमार राजमल जैन, सोनगढ़
श्री जयपाल जैन, दिल्ली
श्री चेतना महिला मण्डल, खैरागढ़
श्रीमती किरण – एस.के. जैन, खैरागढ़
स्व.गैंदामल ज्ञानचन्द सुमतप्रसाद अनिल जैन, खैरागढ़
स्व. मुकेश गिड़िया स्मृति ह. सरला जैन, खैरागढ़
सौ. सुषमा जिनेन्द्रकुमार, खैरागढ़
श्रीमती श्रुति-अभयकुमार शास्त्री, खैरागढ़
सौ. अचरजकुमारी श्री निहालचन्द जैन, जयपुर
सौ. शोभाबाई भवरीलाल चौधरी, यवतमाल
सौ. ज्योति सन्तोषकुमार जैन, डोभी
श्री कस्तूरी बाई बल्लभदास जैन, जबलपुर
स्व.यशवंत छाजेड़ ह.श्री पन्नालाल छाजेड़, खैरागढ़
श्री आयुष्य जैन संजय जैन, दिल्ली
श्री सम्यक अरुण जैन, दिल्ली
श्री सार्थक अरुण जैन, दिल्ली
श्री केशरीमल नीरज पाटनी, ग्वालियर
श्री परागभाई हरिवदन सत्यपंथी, अहमदाबाद
श्रीमती नम्रता-प्रशम मोदी, सोनगढ़
श्री हेमलाल मनोहरलाल सिंघई, बोनकट्टा
स्व. दुर्गा देवी स्मृति ह. दीपचन्द चौपड़ा, खैरागढ़
शाह श्री कैलाशचन्दजी मोतीलालजी, भिलाई
श्रीमती प्रेक्षादेवी प्रवीणकुमारजी शास्त्री, रायपुर
लक्ष्मीबेन वीरचन्द शाह ह. शारदाबेन, सोनगढ़
श्रीमती चेतनाबेन पारुलभाई भायाणी, मद्रास
श्रीमती स्वाति-आशीष जैन, नवसारी
श्रीमती वर्षाबेन-निरंजनभाई, सुरेन्द्रनगर
श्रीमती रूवी-राजकुमार जैन, दुर्ग
श्रीमती विजया विजयकुमार जैन, विलासपुर
स्व. धरमचंद संचेती ह. किशोरकुमार संचेती, कटंगी
श्रीमती नेहाबेन-जितेन्द्र भाई गोगरी, माटुंगा
श्रीमती लक्ष्मीबेन शशांकभाई शाह, माटुंगा
श्री जयकुमार जैन, शिवपुरी
श्रीमती सुशीला बेन जयन्ती लाल गाला, माटुंगा
लक्ष्मी बेन, ब्र. कुन्ती बेन, सोनगढ़
कु. आरोही, श्रीमती परींदा-राहुल पारिख, न्यूजीलेण्ड
कु. श्रेया श्रीमती मीता-दीपक पारिख, मुम्बई

साहित्य प्रकाशन फण्ड

श्रीमती चन्द्रकला प्रेमचन्द जैन, खैरागढ़	1001/-
श्रीमती कल्पना अनिलकुमार जैन, खैरागढ़	501/-
श्रीमती स्वर्णा प्रदीपकुमार जैन, खैरागढ़	501/-
श्रीमती वरखादेवी मनोजकुमार जैन टाटिया, खैरागढ़	501/-
श्रीमती समता अमितकुमार जैन, कानपुर	501/-
ब्र. ताराबेन मैनाबेन, सोनगढ़	501/-
स्व. श्रीमती कंचनबाई ह. श्री दुलीचंद-कमलेश जैन, खैरागढ़	501/-
श्रीमती कंचनबाई पन्नालाल जैन गिडिया, खैरागढ़	501/-
श्रीमती ऑचल-निश्चल जैन, ह. सरला जैन, खैरागढ़	501/-
श्रीमती गुलाबबाई पन्नालाल छाजेड़, ह. ब्र. जमनाबेन खैरागढ़	501/-
श्रीमती कंचनबेन जैन, लोहारा	501/-
श्रीमती सोनम विनय जैन चौपड़ा, खैरागढ़	501/-
श्री रितिक जैन राजेश जैन, कटनी	501/-
श्रीमती रेखाबाई-रेनूबाई-रीताबाई भूरा, भिलाई	501/-
श्रीमती रूवी राजकुमार जैन, दुर्ग	501/-
ढेलाबाई चैरीटेवल ट्रस्ट ह.श्री मोतीलाल जैन, खैरागढ़	501/-
श्री झनकारीबाई खेमराज बाफना चैरीटेवल ट्रस्ट, खैरागढ़	501/-
श्रीमती पूजा साकेत शास्त्री जयपुर	201/-

जीवन की
पवित्रता का व्यावहारिक सूत्र -
कोई कार्य छिपाकर
न करें। – ब्र. रवीन्द्रजी आत्मन्

1 भोगी से योगी
(धन्य–धन्य सुकुमाल महामुनि!)

उज्जयिनी नगर में राजा वृषभांक राज्य करता था। इसी नगर में अटूट वैभव के धनी सुरेन्द्रदत्त नाम के श्रेष्ठी निवास करते थे। उनकी पत्नी का नाम यशोभद्रा था। उनके कोई सन्तान नहीं थी। इस कारण यशोभद्रा निरन्तर पुत्र दर्शन के लिये बेचैन रहती थी। पुत्र के बिना सम्पूर्ण वैभव उसे विषतुल्य जान पड़ता था। सुरेन्द्रदत्त विरागी प्रकृति के थे, वे दीक्षा के लिये अवसर देख रहे थे। पुत्र प्राप्ति के लिये यशोभद्रा ने सभी कृत्य कर लिये थे।

''मोहान्ध प्राणी वीतरागी से भी राग की भीख माँगता है। भोगों और पुत्रादिकों को तृणतुल्य समझकर छोड़कर जानेवालों से भी भोगों और पुत्रादि-प्राप्ति की अभिलाषा करता है। सन्तान का उन्माद इस जीव को अन्ध कर देता है। उसका विवेक कुण्ठित हो जाता है। वह सर्वत्र माथा फोड़ने के लिए (टेकने) तैयार हो जाता है।''

एक बार मुनिराज के आगमन पर राजा ने नगर में आनन्द-भेरी बजवाई। तब यशोभद्रा भी मुनिदर्शन के लिये गई और मुनि की वन्दना करके पूछा – ''हे नाथ ! अपार धन सम्पन्न होने पर भी अब तक मेरी गोद खाली है, इसलिये मैं बहुत दुःखी हूँ, मुझे पुत्रदर्शन होंगे या नहीं ?''

मुनिराज बोले – ''पुत्र तो होगा, किन्तु उसका मुख देखकर तुम्हारे पति दीक्षा ले लेंगे।''

संयोग-वियोग की ऐसी विचित्र बात सुनकर उसकी आँखों से

हर्ष-विषाद के आँसू निकल पड़े। ''**संयोग-वियोग यह तो जगत का स्वरूप है, अज्ञानी उन्हें बदलना चाहता है; इसलिये निरन्तर दुःखी है और ज्ञानी उन बदलते हुए संयोगों को मात्र जानता है, इसलिये निरन्तर सुखी है।**''

कुछ समय पश्चात् यशोभद्रा के महान गुणवान और रूपवान पुत्र की प्राप्ति हुई। पति को मालूम न पड़े, इसलिये इस समाचार को गुप्त रखा गया। पुत्र की सम्पूर्ण व्यवस्था तलघर में कर दी गई, परन्तु ''**होनहार बलवान होती है, अनहोनी कभी होती नहीं और होनी कभी टलती नहीं।**''

दासी के द्वारा रुधिरादि से लिप्त मलिन वस्त्रों को धोता हुआ देखकर किसी ब्राह्मण ने उनके पुत्र-प्राप्ति का अनुमान कर लिया और धन के लोभ में सेठ को पुत्रोत्पत्ति का समाचार सुना दिया। सेठ ने पुत्र का मुख देखकर ब्राह्मण को बहुत द्रव्य देकर विदा किया।

पत्नी के इस छल को देखकर उनका वैराग्य प्रबल हो उठा, वे सोचने लगे –

''**अहो ! इस जीव के धर्मधन को लूटने के लिये यह कुटुम्बरूपी ठगों की टोली है। अरे ! इन भोगों के लिये यह देव-दुर्लभ मनुष्य पर्याय बर्बाद करना, वह तो चिन्तामणि रत्न देकर काँच खण्ड खरीदना है, अमृत छोड़ विष पीना है, सूत्र के अर्थ मणिमय हार तोड़ना है, ईंधन के लिये कल्पवृक्ष छेदना है, लोहे की कील प्राप्त करने के लिये पानी में दौड़ती नाव को तोड़ना है, तथा अपने कण्ठ में भारी पाषाण बाँधकर अगाध समुद्र में प्रवेश करने जैसा अहितकारी है।**'' – ऐसा विचार करके पुत्र को सम्पूर्ण सम्पत्ति का अधिकारी बनाकर स्वयं नग्न दिगम्बर दीक्षा धारण कर वन की ओर चले गये।

(२)

अतिस्नेह के कारण यशोभद्रा ने अपने पुत्र का नाम 'सुकुमार' रख दिया। पति का वियोग होने पर उसका स्नेह पुत्र पर और अधिक बढ़ गया। कहीं मुनि को देखकर वह भी दीक्षा न ले ले – ऐसा भय उसके हृदय में व्याप्त हो गया। वह मुनिदर्शन न कर सके – ऐसी उसने कठोर व्यवस्था कर दी।

उसने सम्पूर्ण भोगसामग्री अपने महल में ही जुटा दी, विशाल वेष्टित प्राचीरों से एक रत्नजडित स्वर्ण महल बनवाया, उसके चारों ओर बत्तीस रजतमय महल बनवाये। इस स्वर्ण महल में रहता हुआ वह कुमार दिन-रात का भेद भी न जान पाया। राजा-प्रजा, शीत-गर्मी, दुःख-दरिद्रता से वह पूर्णतः अनभिज्ञ था। मुनिदर्शन तो उसे स्वप्न में भी दुर्लभ थे। जहाँ सूर्य अपनी किरणें न भेज सका, वहाँ मुनिराज का गमन कैसे होता ?

''अहो ! उस सुकुमार का सम्पूर्ण संसार ममता के विषय की चार-दीवारी में संकीर्ण हो गया। माँ की ममता ने उसके हित के सम्पूर्ण रास्ते बन्द कर दिये। महल नहीं, मोह के 'कारागृह' में उसे कैद कर दिया। अरे ! माँ ने ही पुत्र के मार्ग में काँटे बिछा दिये।''

युवावस्था आने पर बत्तीस कन्याओं के साथ उसका विवाह कर दिया। मानांजुलि के जल की तरह उसका जीवन-जल खिरने लगा। भोग और विलास की करवत् उसके गले पर चलने लगी। वह भोगों की रंग-रलियों में अपना सब-कुछ भूल गया। माँ की ममता ने उसे मदहोश कर दिया।

(३)

''यह विषयभोग जीव को अग्नि की तरह दाह उपजानेवाले; कालकूट जहर की तरह अचेत करनेवाले; तृष्णा बढ़ानेवाले; महाबैर, मूर्छा, प्रलाप, दुःख, भय, शोक, भ्रम उपजानेवाले हैं। इन विषयों का चिन्तवन ही जीव को अचेत कर देता है। तब सेवन तो...?''

''जब एक-एक इन्द्रियों के विषय के अभिलाषी हस्ति, मीन, भ्रमर, पतंगा और हिरण मरण को प्राप्त होते हैं, तो पाँचों इन्द्रियों के भोगों की निरन्तर अभिलाषा से पस्त इस जीव की संसार में क्या दशा होगी ?''

एक दिन किसी व्यापारी ने आकर एक रत्नमय बहुमूल्य कम्बल राजा को दिखलाया, राजा ने मूल्य न दे सकने के कारण उसे वापिस कर दिया। यशोभद्रा ने उसका मूल्य चुकाकर अपने पुत्र के लिये उसे खरीद लिया, परन्तु सुकुमार ने उसे देखकर कहा कि यह कठोर है, इसलिये मेरे योग्य नहीं। तब यशोभद्रा ने उस कम्बल की अपनी पुत्रवधुओं के लिये जूतियाँ बनवा दीं।

एक दिन एक पक्षी माँस का टुकड़ा समझकर उनमें से एक जूती उठा ले गया और उसे राजभवन में ले जाकर छोड़ दिया।

राजा ने आश्चर्य से उसे देखकर पूछा – ''यह क्या है ?''

तब किसी ने कहा – ''यह सुकुमार की पत्नी की पादुका है।''

– यह सुनकर राजा कौतूहल पूर्वक सुकुमार को देखने के लिये चल दिये।

यशोभद्रा ने राजा के आगमन पर उनका बहुत सम्मान किया और रत्न सिंहासन पर उन्हें बिठाया।

"हे देव ! आपका शुभागमन कैसे हुआ ?" विनम्रता से यशोभद्रा ने पूछा।

"सुकुमार को देखने आया हूँ" – राजा ने जवाब दिया।

सुकुमार को देखकर राजा ने बहुत स्नेह से अपने ही साथ सिंहासन पर उसे बिठा लिया।

तत्पश्चात् यशोभद्रा ने राजा से भोजन करने का आग्रह किया। भोजन के पश्चात् राजा ने अन्यमनस्क होकर कहा –

"कुमार को तीन व्याधियाँ जान पड़ती हैं, आप उनकी उपेक्षा क्यों कर रही हो ?"

"कौन-सी राजन् ! – यशोभद्रा ने विनम्रता से पूछा।

"१. वह अपने आसन पर स्थिर नहीं बैठता; २. प्रकाश में इसकी आँख से पानी बहता है और ३. भोजन में एक-एक चावल खाता है और थूकता है।" – राजा ने खेदपूर्वक कहा।

यह सुनकर यशोभद्रा बोली – "राजन् ! यह दिव्यशय्या पर सोता है और दिव्यगद्दी पर बैठता है, आज आपके साथ सिंहासन पर बैठा, तो राई के दाने जो आप पर न्यौछावर किये गये थे, वह इसे चुभ रहे थे; इसलिये ठीक से न बैठ सका। इसने अब तक रत्नों की प्रभा को छोड़कर कभी दीपक की प्रभा को नहीं देखा, अतः जब आपकी दीपक से आरती उतारी, तब उसे देखकर इसकी आँखों में आँसू आ गये। और राजन् ! तीसरी बात यह है कि उसके लिए सूर्यास्त के समय चावलों को तालाब के भीतर कमल की कर्णिका में रख दिया जाता है, तब दूसरे दिन उन चावलों से बने भात को खाता है। आज उन चावलों में कुछ अन्य चावल मिला दिये गये थे, इसलिये वह उन्हें चुन-चुन कर खा रहा था।"

राजा को यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ और वह उस कुमार

का नाम 'अवन्ति सुकुमार' रखकर वापिस राजभवन चला गया।

"विपत्ति का एक क्षण भी बहुत काल जैसा व्यतीत होता है, जबकि सुख का बहुत समय एक क्षण जैसा चला जाता है।"

सुकुमार के जीवन का अमूल्य समय भोगों की मग्नता में ही व्यतीत हो गया। माँ की ममता और भोगों की प्रचुरता में उसने जीवन का सब कुछ भुला दिया था।

"**इस मनुष्य पर्याय का एक पल भी अमूल्य वस्तु के समान महादुर्लभ है। एक पल को व्यर्थ खोना एक भव हार जाने के समान है। चक्रवर्ती की समस्त सम्पत्ति से भी इस देह का मात्र एक समय भी विशेष मूल्यवान है – ऐसी यह मनुष्य देह और आत्महित के अनुकूल ऐसा संयोग प्राप्त होने पर भी जो जन्म-मरण से रहित परमपद का ध्यान नहीं रखता, उस मनुष्य में अधिष्ठित आत्मा को अनन्तबार धिक्कार हो !!**"

(४)

एक दिन सुकुमार के मामा यशोभद्र मुनिराज को अवधिज्ञान से विदित हुआ कि अब सुकुमार की आयु बहुत अल्प रह गई है और उसकी माँ ने उसके हित के सभी दरवाजे बन्द कर दिये हैं और वह पुत्र के व्यामोह में उन्मत्त हो गई है। तब वह सुकुमार को बोध जागृत करने के लिये वर्षायोग ग्रहण करने के दिन ही उसके भवन के निकटवर्ती उद्यान में स्थित जिनमन्दिर में आये।

वनपाल ने मुनिराज के आगमन का समाचार यशोभद्रा को दिया। वह मुनिराज के पास पहुँची और वंदना करके बोली –

"हे नाथ मुझे पुत्र का मोह बहुत है, वह आपके वचनों को सुनते ही दीक्षा ग्रहण कर लेगा, तब मैं उसके वियोग में जीवित नहीं रह सकूँगी; इसलिये आप यहाँ से अन्यत्र विहार कर जावें।

अहो ! पुत्र के व्यामोह में उसे मुनिराज का आगमन भी शत्रु के समागमतुल्य दिख रहा था।

मुनिराज बोले – ''हे माता ! आज वर्षायोग का दिन है, अब अन्यत्र जाना सम्भव नहीं, अब मुझे चातुर्मासिक प्रतिमायोग से यहीं रहना पड़ेगा।''

यशोभद्रा दुःखी मन से घर गई और सुकुमार की सुरक्षा और अधिक कड़ी कर दी, ताकि मुनिराज की गंध भी वहाँ न पहुँच पाये।

कार्तिक की पूर्णमासी को रात्रि के अन्तिम प्रहर में मुनिराज ने वर्षायोग समाप्त किया। जब उन्होंने जाना कि सुकुमार की निद्रा भंग हो चुकी है, तो उन्होंने '**त्रिलोक-प्रज्ञप्ति**' का पाठ प्रारम्भ कर दिया और जब उसमें अच्युत स्वर्ग के पद्मनाभ देव की विभूति का वर्णन आया तो उसे सुनकर सुकुमार को जातिस्मरण हो गया और उनका हृदय वैराग्य से भर गया, सम्पूर्ण वैभव उसे क्षण में विषतुल्य भासने लगा और भोग भुजंग समान दिखने लगे। वह पिंजड़े में बन्द पंछी की तरह इस 'कारागृह' से मुक्ति के लिये तड़फने लगा।

वह कुमार भवन से जाने को उद्यमी हो गया, पर उसे कोई उपाय नहीं दिखा, इससे वह व्याकुल हो उठा। इतने में उसे एक वस्त्रों की भरी पेटी दिखी, उसने वस्त्रों को निकालकर परस्पर में जोड़ लिया और उस वस्त्रमाला को खिड़की से बाँधकर पुण्योदय से नीचे उतर गया।

पश्चात् मुनिराज के निकट जाकर वन्दना करके दीक्षा लेने की प्रार्थना करने लगा।

मुनिराज मधुर एवं वैराग्य सम्पन्न सम्बोधन देते हुए बोले – वत्स! तुमने सम्यक् विचार किया है। **यह समस्त धन सम्पदा, आज्ञा,**

ऐश्वर्य, भोग-सामग्री तो देखते-देखते वियोग को प्राप्त होंगे। यौवन मध्याह्न की छाया की तरह ढ़ल जायेगा।

चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्रादि तो अस्त होकर फिर उदित होते हैं, ऋतुयें जाने पर पुनः पुनः वापिस आती हैं; परन्तु एक बार जाने पर इन्द्रियाँ, यौवन, आयु, कायादिक वापिस नहीं आते। जैसे पर्वत की नदी बेखटक चली जाती है, वैसे ही यह आयु क्षण-क्षण में अरोक चली जा रही है। **सिरपर मौत सवार है,** ऐसे अवसर में आत्महित को भूलना यह बड़ा अनर्थ है। **यह मनुष्य जन्मादिक सामग्री बारम्बार नहीं मिलती।** इसलिये हे पुत्र ! आत्महित में शीघ्र सावधान हो जाओ ! अवसर चूकना योग्य नहीं, अब तुम्हारी आयु मात्र तीन दिवस ही मात्र शेष है।

मुनिराज का करुण एवं वैराग्यपूर्ण तात्विक सम्बोधन सुनकर सुकुमार की वैराग्य-वीणा झनझना उठी। जैसे शत्रुओं के आक्रमण को देखकर सोता हुआ सिंह जागकर सावधान हो जाता है, वैसे ही सुकुमार भी नग्न दिगम्बर दीक्षा धारण करने के लिये कटिबद्ध हो गये और जिनेश्वरी भगवती दीक्षा धारण करके वन की ओर चल दिये। **'अहो ! एक भव्यात्मा भोगी से योगी बन गया।'**

''कहाँ राई का दाना चुभता था और कहाँ कंटीली भूमि, कहाँ कोमल सेज और कहाँ भूमिशयन, कहाँ रत्नपात्र और कहाँ पाणिपात्र। कल जिस देह पर अनन्त अनुराग था, आज उस देह से पडोसी की तरह निर्ममत्वभाव था। कोमल काया आज कठोर तप करने चल पड़ी।''

अरे ! कोमल पग भूमि पर पड़ते ही पैरों से खून बह निकला, रास्ते में रुधिर की धार लग गई, सम्पूर्ण रास्ता खून से लथपथ हो गया। मुनिराज सुकुमार वन में जाकर एक शिलातल पर प्रतिमायोग से ध्यानस्थ हो गये, **देह से विरक्त हो आत्मस्थ हो गये।** आज

स्वयं का आत्मा, उसके अनन्तगुण और पर्यायें ही उनका सम्पूर्ण वैभव था। **भोग तो था; पर जड़ का नहीं, चैतन्य का।** आज उनका आत्मा चैतन्य के नन्दनवन में विहार कर रहा था।

उसी समय सुकुमार की भाभी जिसे सुकुमार ने पूर्व भव में लात मारी थी, वह अनेक भवों में परिभ्रमण करती हुई, कर्मयोग से उसी वन में श्यालनी हुई। वह खून चाटती हुई अपने पुत्रों सहित वहाँ आ पहुँची, जहाँ सुकुमार ध्यानस्थ थे। सुकुमार को देखते ही उसे पूर्व संस्कार से बैर के कारण प्रतिशोध की आग भड़क उठी और वह अतिक्रूर परिणाम से सुकुमार के शरीर को भखने लगी, दूसरी ओर उसके बच्चे भक्षण करने लगे।

"जिसप्रकार कछुवा अपने पर विपत्ति जानकर गहरे पानी में चला जाता है, उसी प्रकार देह पर उपसर्ग हुआ जानकर मुनिराज सुकुमार चैतन्य के सहारे उपसर्ग सहन करते हुए समता जल में निमग्न हो गये। अहो ! धन्य मुनिदशा।"

बैर के कारण श्यालनी तीन दिन तक सुकुमार के शरीर को चोंट-

चोंट कर खाती रही, अन्त में तीसरे दिन जब उसने पेट की आँतों को निकाल कर फाड़ दिया तो उनके प्राण-पखेरू उड़ गये, प्रतिशोध की आग में उनकी देह भस्म हो गई।

अहो ! वह धन्यात्मा परम समाधि से मरण कर दूसरे ही क्षण सर्वार्थसिद्धि में जाकर देव पर्याय में उत्पन्न हुआ और अल्पकाल में परमपद को भी प्राप्त होगा।

''धनि धन्य हैं जे जीव नरभव पाय यह कारज किया।
तिनही अनादि भ्रमण पंच प्रकार तज वर सुख लिया ।।''

श्यालनी ने सुकमाल मुनिराज का घात किये बिना उनके पैर को ही क्यों खाया ? यह जानने के लिए आगामी कहानी पढ़िए।

जो शरीर दुष्ट आचरण से उपार्जित कर्मरूपी कारीगर द्वारा रचा गया है, जिसका सांध और बंधन निंद्य है, जिसकी स्थिति विनाश सहित है अर्थात् जो विनश्वर है, जो रोगादि दोषों, सप्त धातुओं और मल से परिपूर्ण है और जो नष्ट होने वाला है, उसके साथ यदि मानसिक चिन्ता रोग, वृद्धावस्था और मरण आदि रहते हों तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है; परन्तु आश्चर्य इसमें है कि विद्वान पुरुष भी उस शरीर में स्थिरता खोजते हैं। **– श्री पद्मनंदि पंचविंशतिका**

जो अनित्य है, जो असार है और जो अशरणरूप है वह इस जीव को प्रीति का कारण कैसे होता है यह बात दिन-रात विचारने योग्य है। **– श्रीमद् राजचन्द्रजी**

पर्याय में देखना है अपनी वर्तमान योग्यता और द्रव्य में देखना है अपना त्रैकालिक सामर्थ्य। पर में तो उसे देखना है ही नहीं।

– पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

I तीव्र कषाय का फल
(सुकुमाल मुनि के पूर्वभव पर आधारित)

अग्निभूति और वायुभूति नामक दो ब्राह्मण पुत्र अपने पिता का निधन होने पर माँ के कहने पर अपने मामाश्री सूर्यमित्र के पास विद्या अध्ययन को गये थे। पर मामा सूर्यमित्र ने उनसे अपना सच्चा परिचय छुपाते हुए कहा कि हम तुम्हारे मामा नहीं हैं, फिर भी यदि तुम पढ़ना चाहते हो तो हम पढ़ा तो देंगे, पर तुम्हें अपनी आजीविका की व्यवस्था स्वयं ही करनी पड़ेगी।

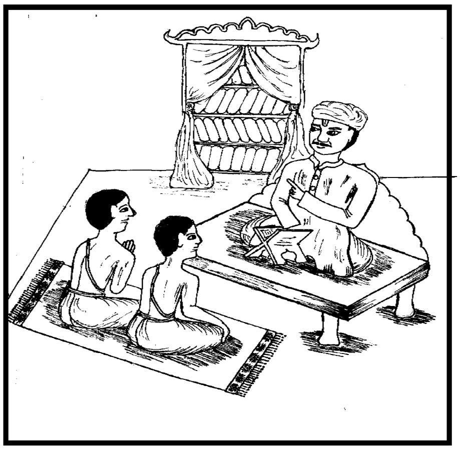

दोनों भाई उनका यह प्रस्ताव स्वीकार कर विद्या अध्ययन में संलग्न हो गये। थोड़े ही समय में बुद्धि की तीक्ष्णता और रुचि के जोर एवं पूर्ण लग्न से वे एक अच्छे गुणी विद्वान बन गये।

वापस जाते समय मामा सूर्यमित्र ने अपना सच्चा परिचय एवं कुछ उपहार देते हुए कहा कि यदि हम उस समय तुम्हें अपना यथार्थ परिचय दे देते, तो तुम लाड़-प्यार में इतने जल्दी इतने अच्छे विद्वान नहीं बन पाते।

यह सुनकर अग्निभूति ने तो उनका उपकार माना, पर वायुभूति उनसे क्रुध हो उपहार लिये बिना ही चला गया।

कालान्तर में मामा सूर्यमित्र तो जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर दिगम्बर

मुनि हो गये। एक बार आचार्य सूर्यमित्र अपने संघ सहित विहार करते हुए कौशाम्बी नगरी में पधारे, जहाँ उनके गृहस्थाश्रम का भानजा अग्निभूत, मामा सूर्यमित्र की निर्ग्रन्थ अवस्था को देखने पर दुर्लभ सम्पत्ति की प्राप्ति के समान आनन्दित होकर, नवधाभक्ति पूर्वक आहारदान देकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

जब मुनिराज वीतरागभाव से आहार लेकर जाने लगे, तब अग्निभूति ब्राह्मण ने प्रार्थना की – 'हे भगवन् ! मेरा भाई वायुभूति क्रोध, मायाचार आदि पाप करता है और आपकी निन्दा करता है, आप उस दुष्ट को जाकर समझाइये!'

आचार्य महाराज ने कहा – 'भाई ! उसके पास जाना ठीक नहीं है, क्योंकि वह स्वभाव से ही कठोर हृदयवाला है।'

फिर भी अग्निभूति के विशेष आग्रह करने पर वे वायुभूति के पास गये, पर पापी वायुभूति ने मुनिराज को देखते ही क्रोधपूर्वक उनकी बहुत निन्दा की, मुनिराज समताधारी थे; अत: वे तो समताभाव पूर्वक वन में चले गये।

अहो ! देखो तो एक भाई तो करुणा से दूसरे का हित करने की भावना रखता है, अतः मुनिराज से विशेष आग्रह करके उन्हें अपने भाई वायुभूति को संबोधित करने ले जाता है। पर जिसका संसार अभी बहुत शेष है, उसे ऐसे वीतरागी साधु के मधुर व हितकारी वचन भी न सुहाये और द्वेष/क्रोध की आग ही भड़की। **जैसे मुनिराज के हृदय रूपी समता सरोवर में क्रोधरूपी अग्नि के वाण शांत हो गये, उसी प्रकार वायुभूति के कलुषित हृदय में मुनिराज के मधुर व हितकारी वचन भी प्रवेश करते ही शांत हो गये।**

छोटे भाई वायुभूति ने मुनिराज की बहुत कठोर वचनों से निन्दा की, इससे बड़े भाई अग्निभूति को बहुत दुःख हुआ। उसे लगा –

'मेरे कारण ही मुनिराज की निन्दा हुई है, इसलिए मैं भी इस पाप का भागीदार हूँ। अब इस पाप की शुद्धि के लिए कारागृह के समान घर का त्याग करके मुनिराज के समीप जाकर मैं भी जिनदीक्षा ग्रहण करूँगा।'

इसप्रकार जिनदीक्षा अङ्गीकार करने का दृढ़ निश्चय करके उसने जङ्गल में पहुँचकर आचार्य सूर्यमित्र से जिनदीक्षा ग्रहण कर ली।

अग्निभूति के जिनदीक्षा के समाचार जानकर उसकी पत्नी सोमदत्ता को बहुत दुःख हुआ। उसने अपने देवर वायुभूति के पास जाकर कहा – 'हे भाई ! तुमने दुष्टता से मुनि की निन्दा की है, इससे मेरे पति को वैराग्य उत्पन्न हुआ है; अतः हमें वन में जाकर उन्हें समझाकर वापस घर लाना चाहिए।'

सोमदत्ता की यह बात सुनकर वायुभूति को बहुत क्रोध आया। उसने क्रोध में अन्ध होकर सोमदत्ता में लात मार दी। इस अपमान से सोमदत्ता अत्यन्त क्षुब्ध हुई और उसने निदानबन्ध किया – 'अभी तो मैं अबला हूँ; इसलिए कुछ भी प्रतिकार करने में समर्थ नहीं हूँ; परन्तु आगामी भव में मैं तुम्हारे इसी पैर का भक्षण करके इस अपमान का बदला लूँगी।'

इधर मुनि की निन्दा के फलस्वरूप वायुभूति को सात दिनों में ही भयंकर कोढ़ हो गया। उसकी असह्य पीड़ा से मरकर वह उसी नगर में गधी पर्याय में उत्पन्न हुआ।

देखो, देव-शास्त्र-गुरु की, साधर्मी की निन्दा करने से जीव की कैसी दुर्गति होती है। इसलिए हे भाई ! भले ही प्राण छूटने का प्रसङ्ग बने तो भी कभी धर्मात्माओं (देव-गुरु-धर्म एवं जिनवाणी आदि) का अवर्णवाद/निन्दा नहीं करना चाहिए।

वह गधी भूख, प्यास आदि तिर्यंचगति के बहुत दुःख भोगकर,

वहाँ से मरकर सूकरी हुई। वहाँ भी बहुत दुःख सहन किये और मरकर क्रूर मुखवाली कुत्ती हुई और वहाँ भी बहुत ही दुःख सहन कर चण्डाल के यहाँ जन्म लेकर अन्धी और दुर्गन्धियुक्त चण्डालनी हुई।

अरेरे ! अनादि से इस जीव ने वीतरागी सर्वज्ञ भगवान द्वारा प्ररूपित जिनवाणी तथा उनके मार्ग पर चलने वाले मुनिराजों के वचनों पर श्रद्धा न करके मिथ्यावचनों पर ही श्रद्धा की है। **फलस्वरूप अपने सुखमयी अनादि अनंत त्रैकालिक तत्त्व को भूलकर क्षणिक, पराश्रित, दुखमयी पर्यायों में अपनापन करके नरक–तिर्यंचादिक गतियों के महान दुःख भोगे।**

एकबार सूर्यमित्र और अग्निभूति मुनिराज विहार करते–करते चम्पानगरी में आये। अग्निभूति मुनिराज आहार चर्या के लिए नगर की ओर जा रहे थे, तब एक वृक्ष के नीचे दुःख से पीड़ित इस चण्डालनी को बैठा देखा। उसे देखते ही अग्निभूति महाराज को कुछ स्नेह और दुःख से आँख में

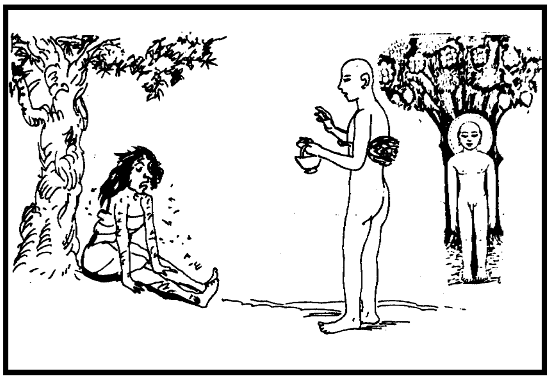

आँसू आ गये। इसलिए उन्होंने आहार के विकल्प का परित्याग कर वापस वन में जाकर उन्होंने गुरु महाराज को नमस्कार करके पूछा – 'हे प्रभो ! रास्ते में एक चण्डालनी को देखने से मुझे शोक और आँसू क्यों आये ?'

सूर्यमित्र मुनिराज ने कहा – 'वह चण्डालनी तुम्हारे छोटे भाई वायुभूति का ही जीव है। पूर्व कर्म के उदय से उसकी यह दुर्गति हुई है। पूर्व जन्म के स्नेह–बन्धन से तुझे शोक और आँसू आये हैं।

हे भद्र ! प्राणियों के जन्म–जन्मान्तर सम्बन्ध से स्नेह और बैरभाव प्रगट हुआ ही करता है।' अब चण्डालनी की आसन्नभव्यता निकट है। आज ही उसकी मृत्यु होनेवाली है। इस कारण तुम वापस जाकर युक्तिपूर्ण वचनों से समझाकर, उसके कल्याण के लिए उसे व्रतपूर्वक संन्यास धारण कराओ। गुरु आज्ञा पाकर अग्निभूति मुनिराज ने चण्डालनी के पास जाकर कहा–

'बेटी ! तू देव–गुरु–धर्म की निन्दा करने के फलस्वरूप ऐसे तीव्र दुःख भोगती रही है। अब धर्म की शरण लेकर, पाँचों पापों के परित्यागपूर्वक समाधि धारण कर। आज ही तेरी मृत्यु होनेवाली है, इसलिए इस कार्य में विलम्ब मत कर!!'

अहो ! देखो तो राग की विचित्रता, वीतरागता का प्रचुर स्व संवेदन करनेवाले अग्निभूति मुनिराज को अपने पूर्वभव के भाई वायुभूति के जीव को चण्डालिनी के भव में देखकर राग हो गया। उसके दुःख को देखकर उनका हृदय करुणाभाव से विगलित हो गया। वे अपनी आहारचर्या को भूल गये, अन्य सामयिकादि मुनि के योग्य षट् कर्म को छोड़कर अपने गुरु महाराज सूर्यमित्र से इस राग का कारण जानकर उसे संबोधित करने चले गये। यही तो होती है मुनिराजों की जीवन में अकारण करुणा। जब वे अपनी शांति को विस्मृत कर भव्यजीवों को करुणापूर्वक उपदेश देने लगते हैं।

मुनिराज के मधुर सम्बोधन से प्रमुदित उस चण्डालनी ने उसी समय व्रत धारण किये और आहार का परित्याग करके समाधिपूर्वक प्राण–त्याग करके नागशर्मा ब्राह्मण के यहाँ नागश्री नाम की पुत्री हुई।

यदि आप नागश्री के भव की कथा जानना चाहते हैं तो आगामी कहानी पढ़ें। जहाँ यह जीव पाँच अणुव्रत लेकर अपनी साधना आरम्भ करेगा, फिर आर्यिका होकर उग्र तपश्चर्या कर अन्त में समाधिमरण करके अच्युतस्वर्ग में ऋद्धिधारी देव होगा।

II धर्मेण हीनः पशुभिः समानः
(सुकुमाल मुनि के पूर्वभव पर आधारित)

इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में एक स्वर्गों से भी सुन्दर चम्पापुर नगरी है, जिसमें चन्द्रवाहन नाम का राजा अपनी लक्ष्मीपति नाम की रानी के साथ रहता हुआ न्यायनीति से राज्य करता था। इसी चम्पापुर में जैनधर्म का द्रोही, महा-मिथ्यादृष्टि एक नागशर्मा नाम का पुरोहित था, उसकी एक नागश्री नाम की पुत्री थी, जो ज्ञान-विज्ञान और विवेक आदि गुणों में अग्रणी थी।

एक दिन नागश्री अपनी सखियों के साथ नगर के बाहर बगीचे में क्रीड़ा कर रही थी कि उसने अपने अपूर्व पुण्योदय से उस बगीचे में अनेक प्रकार की ऋद्धियों के धारक, महानज्ञान रत्नाकर के पारगामी, संसारी जीवों के कल्याण में तत्पर, रत्नत्रय के धारी, तपोधन, ध्यान-अध्ययन में लवलीन, निर्जन्तु स्थान में विराजमान – ऐसे श्री सूर्यमित्र और श्री अग्निभूति नाम के दो मुनिराजों के दर्शन किए और सरलभाव से उनको प्रणाम कर उनके सामने बैठ गई।

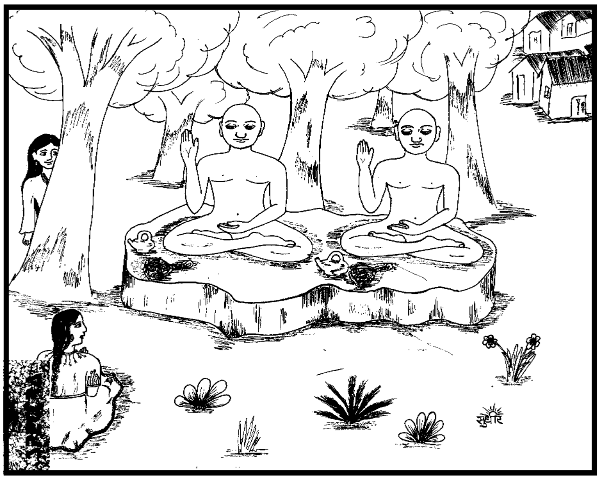

मुनिराज श्री सूर्यमित्र ने अपने निर्मल अवधि ज्ञान से नागश्री के पूर्व भव एवं भविष्य में होने वाली सद्गति को जान लिया। अतः

उन्होंने निकट भव्य एवं पात्र जानकर अपने धर्मोपदेश में पाँच अणुव्रतों का स्वरूप समझाते हुए कहा कि समस्त दु:खों के कारणभूत पाँच पापों के आंशिक त्याग का नाम पंचाणुव्रत है, सभी जीवों को इन धर्मों को धारण करना चाहिए; क्योंकि धर्म से हीन मनुष्य पशु के समान कहा गया है। कहा भी है –

आहार निद्रा भय मैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभि नराणां।
धर्मोहि तेषामधिको विशेष: धर्मेण हीन: पशुभि: समान:।।

इसलिये अपना हित चाहने वालों को धर्म धारण करना चाहिए, क्योंकि धर्म से हीन मनुष्य पशु के समान कहा गया है। कहा भी है –

धर्मोपदेश सुनकर नागश्री ने अति विनय पूर्वक कहा – गुरुवर मेरे योग्य धर्म/व्रत मुझे प्रदान कीजिए।

तब सूर्यमित्र मुनिराज ने नागश्री को अणुव्रत दिए और कहा कि यदि तुम्हारे पिता इन व्रतों को छोड़ने के लिए बाध्य करें तो वहीं न छोड़ देना, हमारे व्रत हमें ही वापस कर जाना।

"हे जगतकल्याणक ! आपकी आज्ञानुसार ही सब कुछ होगा।" यह कह वह मुनिराज को नमस्कार कर जब अपने घर चली गई । उसके पहुँचने से पूर्व ही उसकी सखियों द्वारा उसके पिता को यह सन्देश मिल चुका था। अत: उसने नागश्री के घर पहुँचते ही नागश्री को कठोर वचनों से डांटना प्रारम्भ कर दिया।

"अरी बावली ! तूने यह क्या किया ? अरे यह तो तूने बहुत ही खोटा काम किया है, जो नग्न मुनि को नमस्कार किया और उससे व्रत लिये। ये व्रत अपने लिये श्रेष्ठ भी नहीं और योग्य भी नहीं। इसलिये मेरा कहना मान और इन व्रतों को छोड़ दे।"

पिता के कठोर वचन सुनकर भी वह मृदुवचन बोली– पिताजी !

लिये हुए व्रतों को तो दुर्बुद्धि छोड़ते हैं, उससे जगत में अपयश और निंदा प्राप्त होती है, वह व्यक्ति सबसे अधम समझा जाता है। इसलिये परम कल्याणकारी एवं सारभूत इन व्रतों को मैं तो नहीं छोड़ूंगी।

नागश्री के मृदुवचन सुनकर भी नागशर्मा का क्रोध शांत न हुआ, वह बोला, व्रत नहीं छोड़ेगी तो घर छोड़ना पड़ेगा। सोच ले तुझे क्या करना है ?

नागश्री ने फिर भी शान्तिपूर्वक कहा – पिताजी ! उन मुनिराज ने अन्तिम एक शिक्षा और भी दी थी कि यदि मेरे दिये हुए व्रतों को तेरे पिता छुड़ाने का दुराग्रह करें तो मेरे व्रत मुझे वापस कर जाना, परन्तु उन्हें भंग नहीं करना। इसलिये यदि आप मेरे इन व्रतों को छुड़ाना ही चाहते हो तो मुनिराज के पास चलिये, मैं आपके सामने ही उनके दिये इन व्रतों को उन्हें वापस कर दूंगी।''

पुत्री के वचन पिता की भावना के अनुकूल होने से पिता ने कहा – ''ठीक है, यह मुझे मंजूर है।'' इसप्रकार कहकर वह मुनिराज की निंदा करता हुआ पुत्री नागश्री को साथ लेकर उसके व्रत वापस कराने के लिये घर से वन की ओर चल दिया।

उन दोनों को रास्ते में चलते हुए अनेक घटनाएँ दिखाई दीं, जिनमें पाँचों पाप करने वालों को दण्ड दिया जा रहा था, जिन्हें देखकर नागश्री ने अपने पिता नागशर्मा से पूछा कि इन्हें यह कठोर दण्ड क्यों दिया जा रहा है ?

''बेटी ! मुझे पता नहीं'' ऐसा कहकर नागशर्मा ने तो टाल दिया, पर यदि उसका कारण आप जानना चाहते हैं तो अगली कहानी जरूर पढ़िये। जिससे आपको ज्ञात होगा कि पाँच पापों के फल में कैसे-कैसे महादुख तो इसभव में ही प्राप्त होते हैं। भविष्य में तो नरकादि के दुख भोगने ही पड़ते हैं।

III पाँच पाप का फल (सुकुमाल मुनि के पूर्वभव पर आधारित)

यह तो आपको ज्ञात ही है कि नागश्री ने मुनिराज सूर्यमित्र से पंचाणुव्रत धारण किये थे, जो उसके पिता नागशर्मा को किसी भी कीमत पर स्वीकार नहीं थे, अत: वह उन व्रतों को वापस करने अपनी बेटी के साथ मुनिराज के पास वन में जा रहा था कि रास्ते में वे देखते हैं कि–

राज्य के सिपाही एक युवा पुरुष को बांध कर ले जा रहे हैं। उस पुरुष के दोनों हाथों में हथकड़ियाँ लगी हैं। उसे देखकर नागश्री ने पिता से पूछा – पिताजी ! इस व्यक्ति ने ऐसा कौनसा अपराध किया है, जिससे इसे इसप्रकार बांध कर ले जा रहे हैं ?

पिता ने कहा – बेटी ! मुझे पता नहीं, क्या कारण है। पिता के ऐसा कहने पर उसने कोतवाल से पूछा – कोतवालजी ! किस अपराध के कारण इसे बाँध कर ले जा रहे हो ?

कोतवाल बोला – ''इस चम्पानगरी में अठारह करोड़ दीनार का मालिक देवदत्त नाम का साहुकार था, उसका पुत्र वसुदत्त बहुत ही जुआ खेलता था। वसुदत्त जुआ व्यसन में अक्षधूर्त नाम के जुआरी के से एक लाख दीनार हार गया। अक्षधूर्त ने उससे जीता हुआ धन मांगा और जल्दी चुकाने को कहा तो इस मूर्ख, पापी, निर्दयी वसुदत्त ने उसे छुरा मार दिया, जिससे वह मर गया।

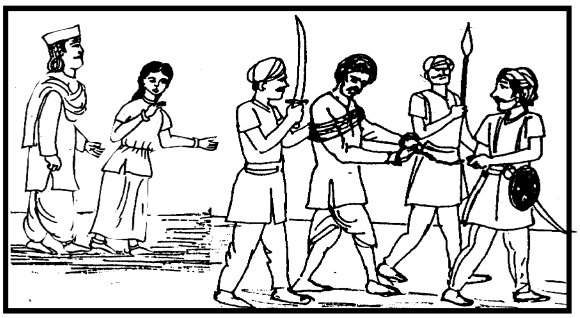

इसलिये इस अपराध के कारण दुर्बुद्धि वसुदत्त को राजा ने फांसी देने का और इसकी सारी सम्पत्ति छीन लेने का दंड दिया है। इसलिये इसे फांसी पर चढ़ाने ले जा रहे हैं।''

यह सुनते ही नागश्री ने पिता से कहा – ''जिस हिंसा आदि कुकर्मों से यहीं मृत्यु तक का दंड मिलता है, उस हिंसा के त्यागरूप संसार में सर्वोच्च पद वाला अहिंसा अणुव्रत ही तो मैंने मुनिराज से लिया है, उसमें क्या दोष है ? उसे मैं क्यों छोड़ूँ ? ऐसा सारभूत एवं उत्तम यह व्रत तीन लोक में किसे सुखदायी नहीं होगा ?

तब नागश्री के वचन सुनकर पिता ने उसे अहिंसाणुव्रत को रखने की स्वीकृति दे दी और शेष व्रतों को वापस करने को जब वे आगे बढ़े तो उन्होंने एक मनुष्य को उल्टा लटका हुआ देखा, जिसके मुँह में काँटे लगे हुए थे और जिसे पीटा भी जा रहा था। उसे देखते ही नागश्री को नारकियों का ध्यान आ गया, नारकियों के समान उस मनुष्य की दुर्दशा देखकर वह मन में दु:खी हुई और उसने अपने पिता से पूछा –

''पिताजी ! इस मनुष्य को इतना दु:ख क्यों दिया जा रहा है ?''

पिता ने जवाब दिया – ''बेटी ! पड़ौसी देश का राजा वज्रवीर्य अपनी सेना सहित सीमा पर खड़े होकर राजा चन्द्रवाहन पर चढ़ाई करके उसका राज्य छीन लेना चाहता था। उसने अपने एक चतुर दूत को राजा चन्द्रवाहन के पास यह संदेश देने के लिए भेजा था कि ''राजा वज्रवीर्य की आज्ञा है कि आप उनकी सेवा में रहना स्वीकार करें और चम्पानगरी उन्हें समर्पित कर दें, इसी में आपका भला है अन्यथा युद्ध के लिए तैयार रहें।''

दूत का यह संदेश सुनकर चम्पापुर नरेश चन्द्रवाहन ने दूत को कहा कि यदि तुम्हारे स्वामी में ताकत है तो युद्ध के लिये सामने आवें, हम आज ही आपके राजा की पूरी शक्ति देखने के लिये तैयार हैं।

इसप्रकार कहकर राजा चन्द्रवाहन ने दूत को विदा किया और एक विशाल सेना सहित बल नाम के सेनापति को राजा वज्रवीर्य से युद्ध करने के लिये भेजा। अपने राजा की आज्ञा से सेनापति बल ने बड़ी भारी सेना सहित जाकर वज्रवीर्य के साथ प्रचंड भय उत्पादक महायुद्ध शुरू किया। जब दोनों के बीच महायुद्ध हुआ तो एक अन्य राजा तक्षक का अंगरक्षक मृत्यु के भय से भागकर राजा चन्द्रवाहन के पास पहुँचा और उन्हें यह झूठा समाचार दिया कि– हे राजन् ! वज्रवीर्य राजा ने आपकी सम्पूर्ण सेना एवं हाथी, घोड़े आदि सभी जीत लिये हैं और आपका सेनापति बल भी पकड़ा गया है। उसके ऐसे वचन सुनकर राजा चन्द्रवाहन बहुत दु:खी और उदास हो गया, परन्तु वास्तव में बात बिलकुल उल्टी थी।

वास्तव में सेनापति बल अपने शत्रु राजा वज्रवीर्य को कैद करके अपने साथ लेकर चम्पापुर की ओर चल पड़ा था। उसके चम्पापुरी में प्रवेश के ठाठ-बाट और सैन्य आदि देखकर राजा चन्द्रवाहन ने समझा कि वज्रवीर्य ही आ रहा है। अत: रक्षा हेतु किले व नगर के दरवाजे बन्द कराकर बड़े-बड़े शूरवीर योद्धाओं के साथ स्वयं युद्ध के लिये तैयार हो गया।

जब यह बात सेनापति बल को ज्ञात हुई तो उसने अपने स्वामी को चिंतित जान उनकी चिन्ता निवारण के लिये स्वयं आगे आकर, सभी दरवाजे खोले और राजा चन्द्रवाहन के समीप जाकर उन्हें नमस्कार किया और बंदी राजा वज्रवीर्य को राजा चन्द्रवाहन के सामने पेश किया। यह देख राजा चन्द्रवाहन बहुत प्रसन्न हुए और सेनापति

बल की बहुत-बहुत प्रशंसा करते हुए विजय के फलस्वरूप उसका सम्मान किया। तथा राजा वज्रवीर्य को मुक्त कर देने की आज्ञा दी एवं उसे न्याय-नीतियुक्त वचनों से तृप्त कर उसे उसके नगर भेज दिया।

यद्यपि वज्रवीर्य राजा अपने देश जाकर पूर्ववत् सभी सामग्री पूर्वक ही सुख से जीवन बिताने लगा, परन्तु पराजय का खेद उसके मन में बना ही रहा।

उधर चन्द्रवाहन राजा ने तक्षक के अंगरक्षक द्वारा कही गई झूठ बात के कारण कोतवाल को उसे दंडित करने की आज्ञा दी। पिता ने नागश्री को बताया कि इस झूठ बोलने के अपराध के कारण ही इसे दंड दिया जा रहा है।

उसे इतना कठोर दंड दिया जाता देख नागश्री पहले ही उसके किसी भयंकर अपराध की कल्पना कर रही थी और जब उसने अपने पिता के मुख से असत्य भाषण का यह फल सुना तो उसने सोचा, ''सत्य बोलना कितना हितकर है'' ऐसा विचारकर वह बोली –

पिताजी ! श्रीगुरु ने मुझे भी तो झूठ न बोलने का ही व्रत दिया है, इसमें तो अपना हित ही है, फिर आप इसे क्यों छुड़ा रहे हैं ? जिससे राजदण्ड, प्रजादण्ड और समाजदण्ड मिलता हो – ऐसा झूठ तो किसी को भी नहीं बोलना चाहिये।

तब नागशर्मा बोला – ''बेटी ! यह व्रत भी तू रख ले, पर इनके अलावा जो व्रत हैं, उन्हें तो वापस करना ही है ?'' इतना कहकर पिता-पुत्री पुन: आगे बढ़े और पुन: एक घटना देखी।

एक मनुष्य को शूली पर चढ़ाने के लिये ले जाया जा रहा था। कोमलहृदयी नागश्री का मन यह देखकर करुणा से भर आया। उसके पिता ने भी यह भाप लिया कि नागश्री इसका दु:ख नहीं देख सकती।

यह फिर से इसका कारण पूछेगी। इतने में नागश्री ने पूछ ही लिया – ''पिताजी ! इस व्यक्ति को शूली पर क्यों चढ़ाया जा रहा है ?''

पिता ने मन में सोचा कि इसप्रकार तो एक-एक घटना के बहाने यह अपने सभी व्रत सुरक्षित कर लेगी, पर करूँ भी क्या, उत्तर तो देना ही पड़ेगा। फिर भी उसने टालने के लिये कहा – ''मुझे नहीं पता।''

पुत्री ने इसका कारण कोतवाल से पूछा – इसने एक चिता पर रखी एक हजार दीनार चुराई थी, अत: इसे फाँसी की सजा दी गई है।

(यदि आप इस चोर की विस्तृत कहानी पढ़ना चाहते हैं तो कहानी नं. ६ अवश्य पढ़ें।)

पापों से भयभीत और अपने व्रतों की रक्षा करने में तत्पर नागश्री ने पिता से कहा – ''जिस चोर्य पाप के कारण यहाँ ही इसप्रकार के महादु:ख, धननाश, अपयश, प्राणदण्ड आदि दुख सहने पड़ते हैं, किसी दूसरे की वस्तु को उसके दिए बिना लेने का त्याग करना तो श्रेष्ठ ही है। अत: यह सभी को परमहितकारी है और इसी का नाम तो अचौर्याणुव्रत है, जो मुनिराज ने मुझे दिया है। इसे कैसे छोड़ा जाय और छोड़ने से लाभ भी क्या है ? चोरी का भाव तो पाप ही है, उससे तो सभी व्यक्तियों को बचना ही चाहिये।''

परमहितकारी जैनधर्म और व्रतों के स्वरूप से अनभिज्ञ तथा जैनधर्म के प्रति द्वेषभाव होने पर भी नागशर्मा का हृदय, यह सब देखकर नागश्री के व्रत छुड़वाने के प्रति ढीला पड़ चुका था और उसका मन भी कुछ शान्त-सा हो गया था। उसे नागश्री के वचन और व्रत भी सारभूत प्रतीत होने लगे थे, अत: उसने नागश्री को यह व्रत भी रख लेने की स्वीकृति दे दी; क्योंकि अन्दर ही अन्दर वह पुत्री नागश्री की भावना को उचित मानने लगा था।

लोक में कहावत है कि ''भावना से भवन बनता है'' नागश्री की भावना तो व्रतों को उत्तम प्रकार से पालने की थी। उसे प्राणों को छोड़ना तो मंजूर था मगर व्रतों को छोड़ना तो दूर, परन्तु उनमें अतिचार लगाना भी बरदाश्त नहीं था। जब तीसरा व्रत रखने की भी स्वीकृति मिल गई तो उसका मन आनन्द विभोर हो उठा।

यह प्रत्यक्ष ही देखने में आता है कि जीवों की हिंसा, असत्य भाषण और चोरी के पाप से व्यक्तियों का अपयश होता है। मार, पीट, वध, बंधन, सर्वस्व हरण, यहाँ तक कि प्राणों का हनन इत्यादि अनेक दुःख इसी भव में मिलते हैं और भविष्य में नरक-पशुगति के अकथनीय अगणित दुःख प्राप्त होते हैं, जिनकी कल्पना मात्र रोमांच करा देती है। इन पापों से प्राप्त इस भव के दुःखदायी प्रसंगों को देख नागश्री पापों से अति भयभीत हो अपने व्रतों की रक्षा में तत्पर हो गई। इसलिये बुद्धिमान जीवों को चाहिये कि वे अव्रतों के दोषों का और व्रतों के गुणों का विचार कर अव्रत दशा को छोड़कर व्रतों को धारण करें।

''प्रचुर स्वसंवेदन जिनकी मोहरछाप है, स्वरूपानन्द विहारी, जगतवंद्य, मोक्ष के साधक – ऐसे मुनिवर धन्य हैं।'' जो स्वयं संसार के पार को प्राप्त हुए हैं और तीन जगत के संसारी प्राणियों को संसार से पार उतारने में चतुर हैं, दर्शन-ज्ञान प्रधान जिनका आश्रम है, जिनका चित्त निर्मल है, ऐसे मुनिराज धन्य हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, सम्यक् तप और धर्मरत्नों के धारक एवं दाता ऐसे परम तपस्वी उन तपोधनों को परमसुख की प्राप्ति के लिये मैं नमस्कार करता हूँ।

व्रतों की स्वीकृति पाने से आनन्दित और अपराधियों के अपराध देख पापों से भयभीत है मन जिसका, ऐसी नागश्री अपने पिता के साथ आगे बढ़ रही थी कि उसे रास्ते में चलते हुए हृदय को कंपा देने वाला दृश्य दिखाई दिया, जिसे देख वह स्तब्ध हो गई। वह दृश्य था – नाक-

कान कटे हुए हैं जिसके और पुरुष के मस्तक के साथ बंधा है कंठ जिसका – ऐसी दुर्दशायुक्त एक महादुखित नारी के बारे में नागश्री ने अपने पिता से जानना चाहा।

पिता ने उत्तर दिया कि इस चम्पापुरी में एक मनस्क नामक वणिक के नंद-सुनंद नाम के दो पुत्र हैं और एक उनके मामा सूरसेन की 'मदाली' नाम की कन्या है। नंद के चित्त में 'मदाली' से शादी का विचार चल रहा था, इसी बीच नन्द द्वीपान्तर जा रहा था अत: उसने विचार किया कि मदाली से शादी करके दोनों का जाना उचित होगा। यह बात उसने मामा सूरसेन ने कही।

मामा सूरसेन ने कहा – 'तुम कितने समय बाद परदेश से वापस आओगे।'' नन्द ने कहा – बारह वर्ष बाद।

अत: सोमसेन ने उसे वचन दे दिया कि ठीक है, तुम्हारी शादी मदाली से कर देंगे, पर बारह वर्ष बाद।

नन्द ने द्वीपान्तर के लिए प्रस्थान किया। पर बारह वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी जब वह लौटकर नहीं आया तब सूरसेन कुछ चिंतित हुआ और विचारने लगा कि यदि नन्द नहीं आया तो कन्या का जीवन व्यर्थ बर्बाद हो जायेगा; अत: उसने कुछ दिनों राह देखने व विचार करने के बाद मदाली का विवाह नंद के भाई सुनन्द के साथ कर देने का प्रस्ताव सुनन्द व उसके पिता के सामने रखा।

पिता-पुत्र ने भी विचार कर अपनी स्वीकृति दे दी। फिर क्या था दोनों जगह शादी की तैयारियाँ होने लगीं, मण्डप सजाये जाने लगे, मंगलाचार के गीतों की ध्वनियाँ गूँजने लगी। अब शादी होने में कुल पाँच दिन ही शेष रह गये थे कि में नन्द भी द्वीपान्तर से वापस आ गया और उसे यह समाचार भी मिल गया। तब सूरसेन ने अपना विचार बदल मदाली की शादी नन्द के साथ ही करने को कहा।

यह सुनकर बुद्धिमान नन्द ने अपने मामा से कहा मेरे विलम्ब से आने के कारण आपने अपनी पुत्री मेरे छोटे भाई को देना निश्चित कर ही लिया है, इसलिए मदाली छोटे भाई की पत्नी होने के कारण मेरी तो पुत्री समान हो गई। अत: मैं उससे शादी कैसे कर सकता हूँ ?

यहाँ जब सुनन्द को यह ज्ञात हुआ तो उसने भी यह कहकर शादी से इंकार कर दिया कि वह मेरी भाभी होने से मेरी माता के समान हुई, अत: मैं उससे शादी कैसे कर सकता हूँ ?

इसप्रकार दोनों ने ही शादी से इन्कार कर दिया और वह कन्या अपने पिता के घर ही पूर्ण यौवनावस्था को प्राप्त हो गई।

आगे क्या हुआ ? हुआ यह कि धनवानों की दो ही गति होती है। या तो ''धन-कन-कंचन त्याग शिवपंथ को चलें या फिर धनमद से मतिभ्रष्ट हो पापाचरण करें।'' दूसरी ही गति उस मदाली की हुई।

पूर्व पुण्यवशात् उसी नगर में एक बारह करोड़ दीनारों का स्वामी, बारह पत्नियों का पति होने के बाद भी पापी एवं व्यभिचारी दुर्बुद्धि नागचन्द्र नाम का वैश्य रहता था। वह सूरसेन की कन्या मदाली से कुकर्म करने लगा। पापोदय से उनका पाप थोड़े ही समय में प्रगट हो गया। सो सत्य ही है, पाप कभी छुपा नहीं रहता, पाप का घड़ा फूटता ही है। राजा द्वारा इसी अपराध की सजा में यह दंड दिया है।

पिताजी के मुँह से ऐसे वचन सुनकर नागश्री बोली–

''पिताजी ! शीलव्रत के बिना अनाचारियों को इतने दु:ख भोगने पड़ते हैं तो

मैंने कलंक रहित और जगतपूज्य ऐसा जो शीलव्रत लिया है वह कितना हितकारी है, उसे आप क्यों छुड़ाना चाहते हैं ?''

दुराचारियों की प्रत्यक्ष दुर्दशा देखकर नागशर्मा निरुत्तर सा रह गया और मन में सोचने लगा, कोई बात नहीं एकदेश शीलव्रत ही तो लिया है। यह व्रत विवाह आदि का प्रतिबंधक नहीं है, इसलिये उसने इस व्रत को भी रख लेने की स्वीकृति भी नागश्री को दे दी।

नागश्री मन में आनन्द के साथ आगे बढ़ती जा रही थी और सोचती जा रही थी कि पिताजी को भी सद्बुद्धि आती जा रही है और मेरे पुण्योदय से एक के बाद एक ऐसे प्रसंग उपस्थित होते ही जा रहे हैं, जो मेरे व्रतों की रक्षा में वा पिताजी को सद्बुद्धि में निमित्त बनते जाते हैं। चार व्रतों की स्वीकृति तो मिल ही गई।

अब सत्य के प्रताप से शेष एक की भी स्वीकृति मिल ही जावेगी। कुछ दूर चले कि पाँचवाँ प्रसंग भी सामने आ गया।

क्या था वह प्रसंग ? वह यह था कि कुछ सिपाही एक मनुष्य को बांधकर मारते-मारते ले जा रहे थे। अत: नागश्री ने अपने पिता से उसे बांधकर ले जाने व मारने का कारण पूछा।

पिता ने जवाब दिया – ''इस मनुष्य का नाम वीरपूर्ण है, यह सदा दूध का ही भोजन करता है और महान लोभी है। यह राजा की अश्वशाला का रखवाला है उसकी अश्वशाला में एक दिन घास चरने हेतु कुछ गाय, भैंसें का एक समूह घुस आया। वह उनको पकड़ कर राजा के पास ले गया, तो राजा ने उन सभी पशुओं को उसे ही दे दिया। वह लोभी तो पहले से ही था। अब और लोभ बढ़ जाने से वह कहने लगा इस गाँव में जितनी अच्छी गायें हैं, वे सभी राजा ने मुझे दे दी हैं।

इसप्रकार कहता हुआ वह गाँव के सभी अच्छे गाय-बैल आदि

ले गया, इतना ही नहीं रानी साहब के पास में भी जो अच्छी-अच्छी गायें-भैंसें थीं, वे भी उसने ले लीं। इस पर रानी बहुत क्रोधित हुई और राजा से सारी हकीकत कह सुनाई। इस पर चन्द्रवाहन राजा ने अत्यन्त क्रोधित होकर इस महालोभी पापी को शीघ्र भारी दण्ड देने की आज्ञा दे दी। इसीलिए ये सिपाही इसे बांध कर मारते हुए ले जा रहे हैं।''

पिताजी के मुँह से यह बात सुनकर नागश्री बोली–

''पिताजी ! जब अति परिग्रह के लोभ से ऐसे बंधन, मारण, ताड़न और प्राणों का हरण जैसे महा दुःख सहने पड़ते हैं तो मैंने श्री मुनिराज से जो परिग्रह-परिमाणव्रत लिया है, उसको पालना तो हितकर ही है, मैं तो उसे मरणपर्यंत भी नहीं छोड़ूँगी।''

पुत्री की दृढ़ता और जैनव्रतों की सत्यता तथा प्रत्यक्ष लाभ देखते हुए नागशर्मा ने नागश्री को यह व्रत भी रख लेने की स्वीकृति दे दी।

नागश्री को तो पापों से निर्वृत्ति का मार्ग मिल गया और उसने अपना भी लिया, हम भी इन पापों को छोड़ें तभी हमारा यह कथानक पढ़ना सफल होगा। अब भी नागशर्मा मुनिराज के पास जायेगा या नहीं और जायेगा तो जाने पर क्या होगा ? वह स्वयं बदल जायेगा या झगड़ा करके वापस आ जायेगा। – ऐसी जिज्ञासा पाठकों को होना स्वभाविक है। जिसके समाधान हेतु आगामी कहानी लिखी है। सभी अवश्य पढ़ें और योग्य समाधान प्राप्त करें।

IV विपरीत मान्यता सत्य स्वीकार नहीं करने देती

पाँचों पापों के फल को प्रत्यक्ष देखकर भी नागशर्मा का जैनधर्म के प्रति द्रोहपना शमन नहीं हुआ। इसलिये वह विचारने लगा कि व्रत भले ही वापस न कराऊँ, परन्तु माता-पिता की आज्ञा बिना किसी के बच्चे को उनने व्रत क्यों दिये ? इसलिये वहाँ जाकर उनको उलाहना तो देना ही है – ऐसा विचार कर वह चलते-चलते जब थक गया, तब अपनी पुत्री के साथ वहीं एक वृक्ष की छाया में बैठकर विश्राम करने लगा। वह वृक्ष की छाया में बैठा-बैठा सोच रहा था कि जैन साधुओं की बात सत्य तो लगती है, मगर हमारी मान्यता से तो मेल नहीं खाती है।

कुछ विचार करने के बाद उसके अन्दर एक प्रश्न उत्पन्न हुआ कि संसार में प्राय: सभी प्राणी दु:खी हैं और वे दु:ख के नाश हेतु ही अथवा सुख और शान्ति को प्राप्त करने के लिए ही धर्म अंगीकार करते हैं, क्योंकि धर्म से ही सुख और शान्ति मिलती है और जिस धर्म में पर प्राणियों को दु:ख देना बताया जाय, उनके प्राणहरण कर बलि आदि चढ़ाई जावे, वह धर्म कैसे हो सकता है ? इस प्रश्न ने उसके हृदय को झकझोर डाला। सच्चा धर्म तो जैनधर्म ही लगता है, परन्तु मैं तो ब्राह्मण हूँ, मैं अपने धर्म को झूठा भी कैसे कहूँ ?

नागशर्मा को जैनधर्म की सत्यता तो प्रत्यक्ष दिख ही गई थी और उसका मन भी यह कबूल कर रहा था कि –''जैनधर्म ही सत्य है' लेकिन यदि मैं जैनधर्म को सत्य मानने लगूं तो लोग मुझसे कहेंगे कि ''जिस नागदेवता की पूजा से तेरे को यह कन्या प्राप्त हुई, तू उसका ही

द्रोही हो गया? इतने महान देवता को छोड़कर इन नंगों की बातों में आ गया ? इत्यादि।"

पुन: उसका हृदय बोलता है – सत्य को जाति, कुल, मान-प्रतिष्ठा या बहुमत की जरूरत नहीं। वह अपनी पुत्री सहित उठकर चलने लगा।

पुन: उसके मन ने गुलांट खाई, अरे ! क्या खबर, कहीं इन नंगों ने अपना चमत्कार दिखाने के लिये यह सब कुछ षड़यंत्र तो नहीं रचा ? उसे संशय रूपी नाग ने फिर डस लिया, इसलिए वह चलते-चलते कुछ रुका। फिर सोचा – कुछ भी हो साधुओं के पास तो पहुँचना है ही, जो भी होगा प्रत्यक्ष में देखेंगे। इसप्रकार के विचारों से युक्त नागशर्मा अपनी पुत्री नागश्री सहित जहाँ मुनिराज विराजमान थे, वहाँ पहुँच गया। तब नागश्री तो मुनिराज को नमस्कार कर गुरुचरणों के समीप बैठ गई, परन्तु नागशर्मा ने तो दूर खड़े रहकर ही मुनिराज को कठोर एवं निन्दनीय वचन कहना शुरू कर दिये।

अरे दिगम्बर ! तूने मेरी पुत्री को जो पाँच व्रत दिये हैं, वे हमारे ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश के द्वारा कहे गये वचनों के विरुद्ध हैं, अत: तुमने ब्राह्मण कन्या को उसके धर्म के विपरीत व्रत देकर अत्यन्त अयोग्य कार्य किया है।

श्री मुनिराज असभ्यजनों के साथ वार्तालाप कभी नहीं करते, वे तो ऐसे अवसरों पर सदा मौन रह आत्मसाधना ही करते हैं। परन्तु मुनिराज ने नागशर्मा को अवधिज्ञान से निकट पात्र जान मधुर शब्दों में उत्तर दिया –

हे विप्र ! मैंने अपना जानकर ही पुत्री को ये पंचाणुव्रत दिये हैं, जो कि धर्म के बीज और दया के मूल हैं, इनसे क्या आपका कुछ बिगाड़ हुआ है ?

मुनिराज के ऐसे वचन सुनकर नागशर्मा आग-बबूला होता हुआ बोला – ''नागश्री तुम्हारी कन्या कैसे हो गई ? अरे यह तो और भी गजब हो गया, यह तो मेरी पुत्री ही छीन लेना चाहता है। ठहर जा, इस बात का निर्णय अभी राजा से ही करा देता हूँ। इसप्रकार बड़-बड़ाता हुआ दौड़ा-दौड़ा राजा के पास पहुँचा और हाँफता हुआ राजा से अपनी बात कहने लगा।

राजा ने कहा – हे विप्रवर ! प्रथम तो शान्त हो जाओ, फिर अपनी बात कहना।

कुछ समय रुकने के बाद नागशर्मा ने हाथ जोड़कर राजा को प्रणाम करते हुए कहा – हे राजन् ! आप सभी यह अच्छी तरह जानते हैं कि नागश्री मेरी ही कन्या है और इसी नगर के वन में दो नंगे साधु आये हुए हैं और वे मेरी नागश्री को अपना कह रहे हैं। वे असत्य बोलकर जबरदस्ती मेरी कन्या छीन लेना चाहते हैं। अत: आपसे मेरी प्रार्थना है कि आप वहाँ पधारकर निर्णय करने की कृपा कीजिये।

नागशर्मा की बात सुनकर राजा ने मंत्री की ओर देखते हुए कहा– ''मंत्रीजी ! ऐसा तो नहीं हो सकता, कुछ असंभव-सी बात लगती है। वे तो साधु हैं, उन्हें झूठ बोलने का क्या प्रयोजन ? लगता है नागशर्मा के समझने में ही कुछ गड़बड़ है।

मंत्री बोला – हे राजन् ! इस जगत में कुछ भी अनहोनी नहीं है। सब कुछ हो सकता है, इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है।

नागशर्मा के अन्दर एक ओर क्रोध की ज्वाला भभक रही थी, तो दूसरी ओर जैनधर्म की सत्यता उसे विवश कर रही थी। फिर भी वह अधीर होकर बोला – हे राजन् ! मैं सत्य कहता हूँ, वे मेरी कन्या को छीन लेना चाहते हैं, आप शीघ्रता कीजिए।

राजा एवं मंत्री दोनों ही वन की ओर चल दिये, साथ में

नागशर्मा, नागश्री की माँ, उसके परिवार वाले एवं अनेक नगरवासी भी चल रहे हैं।

राजा ने कहा – मुझे तो जैन साधुओं पर पक्का विश्वास है कि भले ही सुमेरुपर्वत चलायमान हो जावे, चाहे अग्नि ठण्डी हो जावे; परन्तु दिगम्बर साधु कभी भी किसी कारण झूठ नहीं बोलते। वे सत्य महाव्रत के धारी होते हैं, सम्पूर्ण परिग्रह के त्यागी होते हैं।

मंत्री बोला – राजन् ! फिर भी नागशर्मा कह रहा है, अत: विचारणीय बात तो है ही।

राजा ने कहा – ठीक है, अभी सभी लोग साधुजी के पास चल ही रहे हैं, वहीं पुरोहितजी की बात का समाधान हो जायेगा।

राजा के वचन को मंत्री झूठ तो नहीं कह सकता था, परन्तु साधु के प्रति शंकाशील अवश्य था।

राजा – (स्वगत) अरे ! जब जैन साधु अपने शरीर को ढकने के लिए वस्त्र का जरा सा टुकड़ा भी नहीं रखते, प्रतिदिन भोजन भी नहीं करते और जब कभी जाते हैं तो प्रतिज्ञा भी कितनी कठोर रखते हैं। अपने शरीर से इतने निर्मोही रहते हैं। उन्हें किसी की पुत्री को अपना बनाने का क्या प्रयोजन ? ऐसे तपस्वियों को झूठ बोलने का कुछ प्रयोजन भी तो नहीं दिखता, इत: इसमें अवश्य कोई न कोई गम्भीर रहस्य होना चाहिये। ऐसा विचार करते हुए उन्हें पता भी नहीं चला कि अनेक सभासदों सहित वे मुनिराज के पास कब पहुँच गये।

सभी व्यक्ति एक से विचार वाले नहीं होते। कितने तो मुनिराज को वंदन कर धर्मश्रवण की भावना लेकर गये थे, कितने ही आश्चर्य से विवाद सुनने और कितने ही तमाशा देखने को वन में पहुँचे थे।

''वहाँ चन्द्रसमान निर्मल ज्ञान, वैराग्य से सम्पन्न, अगणित लोगों

से पूज्य, महाव्रतधारी, धीर-वीर गुरु, प्रासुक (निर्जन्तु) शिला पर ध्यानस्थ विराजमान श्री सूर्यमित्र एवं अग्निभूति मुनिराज को नमस्कार कर सभी जन यथास्थान शान्ति से बैठ गये।''

जब मुनिराज का ध्यान भंग हुआ, तब राजा ने अतिविनय पूर्वक नतमस्तक हो श्रीगुरु से प्रश्न किया – 'हे स्वामिन् ! भले ही समुद्र अपनी मर्यादा का उल्लंघन कर जाय, भले ही कुलाचल पर्वतों सहित सम्पूर्ण पृथ्वी उथल-पुथल हो जाय अथवा अन्य कुछ भी अनहोनी हो जाये; परन्तु सत्य महाव्रतधारी मुनिराजों के मुख से निकले हुए वचन कदापि असत्य नहीं होते।' – यह मैं अपने हृदय में अच्छी तरह जानता हूँ। फिर भी हे प्रभु ! मैं आपसे अपने मन में उत्पन्न हुई शंका का समाधान अवश्य चाहता हूँ और वह यह कि जो आपके चरण कमलों के समीप बैठी हुई है, वह नागश्री किसकी पुत्री है ?

मुनिराज ने कहा – हे राजन् ! थोड़ा धैर्य रखिये, सबकुछ अभी स्पष्ट हो जायेगा। राजा की शंका के समाधान हेतु मुनिराज नागशर्मा से बोले – नागश्री आपकी पुत्री है यह तो ठीक है, परन्तु जरा यह भी तो बताईये कि क्या आपने इसे कुछ पढ़ाया है ? कुछ धार्मिक शिक्षा दी है ? कुछ सदाचरण सिखाया है ? क्योंकि पढ़ने-पढ़ाने से ही अज्ञान का नाश होता है।

यह सुनकर नागशर्मा कुछ सोच में पड़ गया, पर वह रहा निरुत्तर ही। तब राजा ने नागशर्मा से कहा – पुरोहितजी ! कुछ जवाब दीजिये, मौन क्यों हो गये ? नागशर्मा ने कहा– प्रभु ! मैंने तो इसे एक अक्षर भी नहीं पढ़ाया, तब धार्मिक शिक्षा या सदाचरण की बात ही क्या करना।

तब मुनिराज ने कहा तो फिर यह आपकी पुत्री कैसे हो सकती है ? इस पर नागशर्मा पुन: बोला – यदि आपने पढ़ाया है तो बताइये आपने क्या पढ़ाया है ?

पुनः मुनिराज ने कहा – ''मैंने तो इसे अनेक शास्त्र पढ़ाये हैं, मेरे कथन में रंचमात्र भी झूठ नहीं।''

मुनिराज के वचनों पर सभी को विश्वास होने पर भी अन्तर्गर्भित रहस्य से अज्ञात होने के कारण सभी आश्चर्य में पड़ गये। राजा चन्द्रवाहन ने पुनः हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक नमस्कार करते हुए कहा–

'हे स्वामिन् ! हे गुरुवर ! आपने इसे जो धार्मिक शिक्षा दी है, शास्त्र पढ़ाये हैं तो उसकी परीक्षा लीजिये, जिससे सभी को विदित हो जाये।'

राजा की भावनानुसार मुनिराज ने कहा – राजन् ! यह सभी शास्त्रों की परीक्षा सभी के समक्ष अभी देगी। धैर्यपूर्वक ध्यान से सुनिये।

फिर श्री मुनिराज ने भरी सभा में जहाँ बड़े-बड़े विद्वान उपस्थित थे, उस कन्या को आशीर्वाद स्वरूप हाथ ऊँचा करते हुए कहा –

''हे वायुभूति ! मुझ सूर्य मित्र ने तुझे राजगृह नगर में जो बहुत से शास्त्र पढ़ाये थे, उन सभी की परीक्षा इन सभी विद्वानों के समक्ष दो, जिससे सभी का संदेह दूर हो।''

इतना कहते ही नागश्री अपनी मधुरवाणी द्वारा सरस्वती के समान अनेक शास्त्रों का पाठ करने लगी। उस समय उपस्थित विद्वानों ने उससे चार अनुयोगों का स्वरूप

पूछा और भी अनेक प्रश्न पूछे, जिनके नागश्री ने सयुक्ति, प्रमाण सहित यथायोग्य उत्तर दिये और इसप्रकार राजा सहित हजारों जनसमुदाय के सामने शास्त्र परीक्षा दी। जिससे सभी के मन में बड़ा हर्ष व आश्चर्य हुआ।

यह देखकर चन्द्रवाहन राजा ने मुनिराज को नमस्कार करते हुए कहा – ''हे प्रभु ! इस नागश्री को आपने वायुभूति कहकर सम्बोधा, इसका रहस्य हमारी समझ में नहीं आया, कृपया इसे भी बताइये ?''

इसका रहस्य पाठक गण पूर्व की कहानियों में पढ़ ही चुके हैं, जिनका सार है – अग्निभूति और वायुभूति दो भाई थे और सूर्यमित्र उनके मामा थे, जब वे दोनों अपनी माँ के कहने पर मामा के पास पढ़ने गये तो मामा सूर्यमित्र ने उन्हें पढ़ाना तो स्वीकार किया पर मामापना स्वीकार नहीं किया। इसप्रकार सूर्यमित्र मुनिराज ने गृहस्थ अवस्था में उन दोनों को शास्त्राभ्यास कराया था, सत्य का पता चलने पर अग्निभूति ने तो उपकार माना पर वायुभूति उनका उपकार भुलाकर और उल्टा उनका अपमान कर वापस घर आ गया था। पश्चात् कालान्तर में सूर्यमित्र तो दीक्षा धारण कर मुनि हो गये और वे अग्निभूति के आग्रह करने पर वायुभूति को सम्बोधन हेतु गये। पर वायुभूति ने उनको भला-बुरा कहा और वे समता धारण कर वन को चले गये। इस कारण अग्निभूति को भी वैराग्य हो गया और वह मुनि बन गये। इधर वायुभूति अनेक भव धारण कर एक बार चण्डालिनी हुआ। अग्निभूति ने उसे सम्बोधित किया और वह नागश्री हुआ। नागश्री ने सूर्यमित्र मुनिराज से पाँच अणुव्रत धारण किये। उसका पिता नागशर्मा उन व्रतों को वापस करने हेतु वन गया तब सूर्यमित्र मुनिराज ने उसे पूर्वभव का वायुभूति जानकर उससे कहा – ''हे वायुभूति ! मुझ सूर्यमित्र ने... उन सभी की परीक्षा दो। जिससे सभी का संदेह दूर हो।''

V कहानी में कहानी
(सुकुमाल मुनि के पूर्वभव पर आधारित)

चम्पापुर नगरी में वसुदत्त नाम का एक धनाढ्य सेठ रहता था, उसकी पत्नी का नाम वसुमति था और उनके वसुकान्ता नाम की एक रूपवती पुत्री थी।

वसुकान्ता को एक दिन सर्प ने डस लिया, जिसके जहर से वह मूर्छित हो गयी। उसे मूर्छित जानकर परिवारजनों ने अनेक उपाय किये, पर उसकी मूर्छा नहीं टूटी, अत: परिवारजनों ने उसे मृतक जान श्मशान में ले जाकर जलाने हेतु उसे चिता पर रख दिया। उसी समय पुण्योदय से वहाँ अनेक देशों में घूमता हुआ गरुडनाभि नाम का एक गारुडी आ पहुँचा। चिता पर रखी रूपवती कन्या को देखकर उसने कहा कि ''यदि आप इस कन्या का विवाह मेरे साथ कर देने का वचन दें तो मैं इस कन्या को जीवित कर सकता हूँ।''

वसुदत्त व उसके परिवारजनों ने विचार किया कि – ''यह भी वणिक है और हम भी वणिक हैं। अत: विवाह करने के अयोग्य तो नहीं है, वय आदि में भी वसुकान्ता के योग्य ही है। अत: यदि यह वसुकान्ता को जीवित कर देता है तो वसुकान्ता का विवाह इससे कर देना कोई अनुचित नहीं होगा।'' यह विचार कर वसुकान्ता का विवाह उससे कर देना स्वीकार करते हुए वसुदत्त ने गरुडनाभि से वसुकान्ता को शीघ्र ही जीवित करने को कहा।

इस पर गारुडी गरुडनाभि बोला कि अभी रात्रि हो चुकी है, अत: यह काम अभी नहीं हो सकता, कल प्रात: मैं इसे अवश्य ही जीवित कर दूँगा, रात भर आप इसके रक्षण की व्यवस्था करें। उसकी रक्षा हेतु वसुदत्त ने चिता पर चारों कोने में एक-एक हजार दीनारों की पोटलियाँ

बाँध कर रख दीं और चार शूरवीर पुरुषों से चिता का रात्रि भर रक्षण करने को कहा और बोला –

''इस निर्जन श्मशान में रात्रि भर चिता का रक्षण करने के पारितोषिक स्वरूप प्रत्येक को एक-एक थैली दी जावेगी।'' – ऐसा कहकर वसुदत्त अपने परिवारजनों सहित घर लौट आया और धन के लोभ में चार शूरवीर चिता का पहरा देने लगे। रात्रि बीतते ही प्रात:काल वह गारुडी गरुडनाभि आया और उसने अपनी मंत्रशक्ति से वसुकान्ता का जहर उतार दिया। वसुकान्ता सचेत हो गई और सेठ वसुदत्त अपनी पुत्री को जीवित जानकर अति हर्षित हुआ और अपने वचन के अनुसार वसुकान्ता का विवाह गरुडनाभि के साथ कर दिया।

पर जो चार पोटलियाँ चिता के चारों ओर रखी गईं थीं, उनमें से एक कम हो गई। वसुदत्त ने समझा कि एक पोटली तो एक ने ले ही ली है, अत: उसने शेष तीन पोटलियाँ पहरा दे रहे शूरवीरों में से जिनने नहीं ली है, उन्हें एक-एक पोटली ले लेने को कहा। पर चारों शूरवीरों में से किसी ने भी पहले से पोटली ली है – ऐसा स्वीकार ही नहीं किया। अत: वसुदत्त सेठ ने नगर के राजा से एक हजार दीनारें चुराई जाने की शिकायत की और चोर की खोज कराई जाने के लिये प्रार्थना की।

राजा ने उसी समय चंडकीर्ति नामक कोतवाल को चोर का पता लगाने का आदेश दिया और कहा कि ''यदि तुम चोर का पता लगाने में असफल रहे तो तुम्हारा मस्तक कटवा दिया जावेगा।''

चंडकीर्ति कोतवाल ने चोर को माल सहित पकड़ लाने के लिये पाँच दिन का समय माँगा और कहा यदि मैं पाँच दिन में चोर को पकड़ने में असफल रहूँ तो महाराज जो उचित समझे, मुझे दण्ड दें।

राजा ने कोतवाल को पाँच दिन का समय दे दिया। अत: वह चारों चौकीदारों को साथ लेकर घर पहुँचा। उसने चारों व्यक्तियों को

भोजन कराया व उनके रहने की व्यवस्था कर, उनसे कहा – आप लोगों को पाँच दिन यहीं रहना पड़ेगा। चंडकीर्ति भेद जानने के लिये उनसे बातचीत करता रहा, परन्तु जब कोई फल नहीं निकला तो वह चिन्ता के अथाह समुद्र में गोते लगाने लगा।

कोतवाल की सुमति नाम की सुन्दर एवं बुद्धिमान कन्या ने जब पिता को चिन्तित देख उनकी चिन्ता का कारण पूछा, तब कोतवाल ने पूरी घटना बताते हुए कहा कि यदि इस कार्य में मैं असफल रहा तो राजा मेरा शिरच्छेद करा देगा – यही मेरी चिन्ता का कारण है।'

'आप चिन्ता छोड़ दीजिए, मैं आज ही चोर का पता लगा कर आपको बता दूँगी।' – पिता से ऐसा कहकर उसने चोर का पता लगाने के लिये उनमें से एक को अपने कमरे में बुलाकर बिठाया और अनेक प्रकार के कटाक्षों एवं अन्य साधनों से उसके मन में काम-विकार उत्पन्न करने का प्रयत्न किया और कहा –

''मुझे तुम बहुत अच्छे लगते हो, मैं तुमसे खूब सारी बातें करना चाहती हूँ, पर मेरे मन में एक शल्य है वह दूर हो जाये तो मैं तुमसे अपने मन की बात कह सकूँ।

अपने मन के अनुकूल बातें सुनकर उसने कहा – कहिए, मैं आपकी किसप्रकार सहायता कर सकता हूँ। तब सुमति ने कहा –

तुम चारों शूरवीरों के वहाँ पहरा देते रहने पर भी चोर एक हजार दीनारें कैसे चुरा ले गया ? उस समय आप लोग क्या कर रहे थे, यह बात कुछ समझ में नहीं आती। उसने जवाब दिया –'सुमते ! मैं तो रात्रि के प्रथम पहर में ही वेश्या के यहाँ चला गया था और अंतिम पहर में लौटकर आया था, अत: मैं कुछ नहीं बता सकता।'

दूसरे को बुलाकर उसके साथ भी उसने पूर्ववत् व्यवहार किया और फिर वही प्रश्न पूछा। दूसरे ने भी कहा – 'मैं तो पहले व्यक्ति

के जाने के तत्काल बाद ही बकरा चुराने जंगल की ओर चला गया था और एक बकरा चुराकर भी लाया था, बाद में क्या हुआ मुझे पता नहीं।'

तीसरे व्यक्ति को बुलाकर सुमति ने उसीप्रकार उससे भी हाव-भाव भरी चेष्टा के साथ प्रश्न पूछा। उसने भी कहा – ''मैं तो माँस खाने के लिये बकरा राँध रहा था, मुझे कुछ भी पता नहीं।

चौथे से भी उसी प्रकार प्रश्न करने पर उसने उत्तर दिया – ''मैं तो उन तीनों के जाने के बाद सो गया था, क्योंकि मुझे नींद बहुत आती है। मैं पोटलियों के बारे में कुछ नहीं जानता।

चारों की बातें सुनकर सुमति के मन में यह तो निश्चय हो गया कि बकरा चुराने वाला चौकीदार ही चौर्यवृत्ति वाला है परन्तु इतने मात्र से उसे पोटली चुरानेवाला तो नहीं माना जा सकता। अत: उसने धैर्य से काम लेना ही उचित समझा।

सुमति को उनकी बातें सुनकर यह तो समझ में आ गया कि ये अपने कार्य के प्रति थोड़े भी सावधान या प्रामाणिक नहीं है। अत: उसने गम्भीरता से विचार कर चारों से कहा – मुझे एक कहानी याद आ रही है। आप लोग सुनना चाहोगे ? सभी ने कहा – एक स्वर में कहा – जरूर सुनना चाहेंगे।

सुमति ने कहानी प्रारम्भ की – पटना शहर में धनदत्त नाम का एक वणिक रहता था। उसकी सुदामा नाम की एक पुत्री थी। एक दिन वह अपने महल के पीछे के तालाब में पैर धोने के लिये गई। वह तालाब में पैर डालकर धो ही रही थी कि तालाब में रहने वाले एक मगरमच्छ ने उसका पैर पकड़ लिया। उसने अपना पैर छुड़ाने के लिये बहुत प्रयत्न किया, मगर वह छुड़ा न सकी, तो दुखित हो जोर-जोर से चिल्लाने लगी – मुझे छुड़ाओ, मुझे छुड़ाओ, मेरा पैर मगर ने पकड़

लिया है। उसकी पुकार सुनकर समीप में रहने वाले कुछ व्यक्ति दौड़ कर आये और सुदामा का हाथ पकड़कर जोर से खींचकर मगरमच्छ से उसे छुड़ा लिया और वह इस विपत्ति से छूट गई।

कुछ माह बाद सुदामा का विवाह हो गया। एक दिन उसे मामा के यहाँ जाने का विचार आया, उसने यह विचार अपने पतिदेव से कहा। उसकी बात सुनकर उसके पति ने कहा, आज शाम को ही चलेंगे। जब वे दोनों शाम को मामा के यहाँ जा रहे थे, तब रास्ते में उन्हें चोरों का समूह मिला, उनने उससे सब आभूषण उतार कर देने को कहा।

चोरों की बात सुनकर सुदामा ने अपनी, अपने पति की एवं अपने आभूषणों की रक्षा हेतु एक झूठ बात बनाई और उन्हें उत्तर दिया कि मुझे इसी हालत में एक स्थान पर जाना है ऐसी मेरी प्रतिज्ञा है इसलिए मैं आपको वचन देती हूँ कि मैं इसी रास्ते वापस आते समय ये सभी आभूषण उतार कर आपको दे दूँगी, अभी मुझे जाने दीजिए। चोरों ने उसकी प्रतिज्ञा सुनकर उसे आगे जाने दिया।

वह कुछ ही दूर आगे पहुँची कि उसे एक राक्षस मिला। राक्षस ने उनसे कहा कि तुम प्रभु का स्मरण कर लो क्योंकि अब मैं तुम्हें मार कर खा जाऊँगा।

वे दोनों विचारने लगे – अभी एक संकट से जैसे-तैसे छूटे कि यह उससे भी खतरनाक संकट खड़ा हो गया, अब इस राक्षस से निपटना आसान नहीं, इस विचार से सुदामा अपने पति की ओर देखने लगी। तब उसके पति ने भी सुदामा को इशारे से वही बात इसे भी कहने को कहा।

सुदामा ने राक्षस को भी वही बात कही, जो चोरों को कही थी। उसकी प्रतिज्ञा जानकर राक्षस ने भी उसे आगे जाने दिया। वे दोनों कुछ

ही आगे बढ़े ही थे कि वहाँ नगर कोतवाल मिला और उन्हें रोका।

सुदामा ने उस कोतवाल को भी अपनी प्रतिज्ञा की बात कही, कोतवाल ने समझा यह किसी देवी-देवता को पूजने जा रही है, इसलिए धर्मकार्य में विघ्न करना अच्छा नहीं। ऐसा सोचकर उसने भी उन्हें आगे जाने दिया।

वे दोनों कुछ आगे बढ़े ही थे कि उन्हें कुछ स्त्री-लंपटी लोग मिले। उनने भी उसे अपने फंदे में फँसाना चाहा। वे लोग सोचने लगे हम लोग तो बहुत हैं, हमारे सामने इसका अकेला पति क्या कर सकता है। ज्यादा करेगा तो इसे भी बाँधकर जंगल में डाल देंगे, परंतु इतनी सुन्दर युवती फिर कहाँ मिल सकेगी। ऐसा विचार कर उनने उन्हें रोका और जबरजस्ती करने लगे।

सुदामा ने जो बात पूर्व में तीन संकटों से बचने के लिए कही थी, वही बात इन लोगों को भी सुना दी। इन्होंने भी उन्हें छोड़ दिया। इस प्रकार अनेक संकटों से पार होते हुए वे दोनों अपने इष्ट स्थान मामा के घर पहुँचे।

कहानी सुनाने के बाद सुमति ने उन चारों चौकीदारों से एक प्रश्न पूछा कि बताओ इन चारों में सबसे बड़ा मूर्ख कौन था ?

मांस पकानेवाला बोला – अरे ! वह राक्षस सबसे बड़ा मूर्ख लगता है, क्योंकि वह राक्षस ही क्या जो दूसरे की प्रतिज्ञा का निर्वाह करने के लिए अपने प्रिय भोजन जैसे पदार्थ को छोड़ दे। अरे, उसे तो मांस खाने का काम है चाहे कोई भी हो। जब उसे दो-दो व्यक्तियों के मांस खाने का अवसर सहज मिल ही गया था तो उसने उन्हें छोड़कर सबसे बड़ी मूर्खता की। यदि उसके स्थान पर मैं होता तो उस जैसी मूर्खता कभी नहीं करता।

नींद लेने वाला बोला – क्या कोतवाल सड़क पर आने-जाने

वाले हर व्यक्ति को रोकता-टोकता है। वह तो मात्र अपराधी को ही पकड़ता है। जनता का तो वह सहायक ही होता है, वशर्ते वह आलसी न हो, ड्यूटी नींद निकाल कर पूरी नहीं करता हो। अत: मेरी दृष्टि में तो वह कोतवाल ही सबसे बड़ा मूर्ख लगता है, क्योंकि पहले तो उसने एक सज्जन नागरिक को रोका और फिर बिना किसी उचित निर्णय किए बिना छोड़ भी दिया।

स्त्री-लम्पट चौकीदार उन लम्पटियों की बात सुनकर बोला – अरे ! सबसे बड़े मूर्ख तो वे लोग हैं, जो स्त्री की बातों में आकर इतनी सुन्दर जवान स्त्री को ही छोड़ बैठे। उन मूर्खों को तो इतनी भी अक्ल नहीं थी कि यह जाने के बाद फिर क्यों आयेगी ? हम अपना काम तो साध लें, उसका जो होना होगा सो हो जायेगा, उसकी प्रतिज्ञा की हमें क्या चिंता ? ऐसी दया करके यदि छोड़ने लगे तो फिर दया ही करते रह जायेंगे। मुझे यदि मौका मिलता तो मैं तो कभी नहीं छोड़ता।

बकरा चुराने वाले चौकीदार से पूछने पर वह बोला – मुझे तो इन सबमें सबसे बड़े मूर्ख तो चोर लगते हैं, क्योंकि उन्होंने अनायास प्राप्त हुए बहुमूल्य जेवरों के साथ उस सुदामा को भी छोड़ दिया, उनके स्थान पर मैं होता तो दुल्हन और दहेज कदापि नहीं छोड़ता।

चारों चौकीदारों की बातें सुनकर सुमति सोचने लगी – जिसका जैसा स्वभाव होता है, उसकी विचारधारा भी सतत् उसके अनुरूप ही चलती है। उसे वैसे ही कार्य करने में रस आता है। वैसे ही कार्य करने वालों की वह संगति करता है। उसके ही उपाय सीखता है और वैसे ही कार्य करके अपने को बहुत अच्छा समझता है। तीन तो चोर नहीं लगते, लेकिन बकरा चुराने वाले के अन्दर के भाव तथा वचन दोनों ही चौर्यकर्म के पोषक ही निकल रहे थे। कितने रसपूर्वक वह चोरी की बात कर रहा था। जैसे वह बहुत ही बहादुरी का कार्य कर रहा हो, परंतु ऐसा कहकर

वह अपनी मूर्खता ही प्रदर्शित कर रहा था। इसलिए निश्चित ही यह चोर है, क्योंकि यह मौका मिलने पर चोरी करने से नहीं चूकता।

अत: चोर का निर्णय तो सुमति को हो गया, परन्तु माल कैसे निकलवाया जाय – इसका उपाय सोचने के लिये उसे कुछ समय चाहिए, इसलिए सुमति ने चारों चौकीदारों से कहा कि आप सभी अपने-अपने कमरे में जाकर आराम कीजिये। रात्रि अधिक हो गई है, मैं भी अब आराम करूँगी। सुबह पुन: मिलेंगे। चारों चौकीदार अपने-अपने कमरे में जाकर आराम करने लगे और यहाँ सुमति अपने पलंग पर लेटी-लेटी यह सोचने लगी कि चोर से माल (एक हजार दीनारें) कैसे निकलवाया जावे? अपराध करते प्रत्यक्ष देखे बिना अथवा समुचित प्रमाण के बिना सीधे तो किसी को अपराधी घोषित नहीं किया जा सकता। अत: उसने अपना कार्यसिद्ध करने के लिए एक चाल और चली।

दूसरे दिन सुमति ने बकरा चुराने व चोर को मूर्ख बतलाने वाले को बुलाकर अपने पास बिठाया और कहा कि मुझे तुमसे प्यार हो गया और मैं तुम्हारे ही साथ रहना चाहती हूँ, पर मेरे पिता तो हमारी शादी के लिए कभी राजी नहीं होंगे। अत: मैंने यह सोचा है हम दोनों किसी अन्य गाँव में भाग चलें, वहाँ किसी मन्दिर में शादी करके सुखपूर्वक रह सकेंगे। वह चोर तो था ही, यह सुनकर उसे विषयों का नशा भी चढ़ गया। वह सोचने लगा कि इन दीनारों के प्राप्त होने पर अब धन सम्पदा की तो कोई कमी है नहीं और फिर इतनी सुन्दर स्त्री भी अनायास ही मुझे प्राप्त हो रही है, इसे छोड़ना भी योग्य नहीं। ऐसी विषय की चाह ने उसे विवेकहीन बना दिया। आखिर चोर था, कुछ भी चुराने के लिए तैयार होने में उसे क्या दिक्कत थी, सो सुमति को ही चुराने के इरादे से उसने दूसरे गाँव भाग चलने की स्वीकृति दे दी।

इस पर सुमति ने कहा कि आपने मेरी बात स्वीकार कर ली, अब मुझे और क्या चाहिए। दूसरे गाँव में रहकर ही दोनों आनन्द से जीवन बिता सकेंगे (एक छोटी-सी पोटली दिखाते हुए) अपने निर्वाह तथा राह खर्च के लिए धन तो चाहिये, मेरे पास तो मात्र इतना-सा धन है कुछ आपके पास भी है क्या ?

'करेला और नीम चढ़ा' की कहावत चरितार्थ करता हुआ वह काम के वशीभूत हो, सुमति में आसक्त हो जाने से अपनी सुधबुध ही खो बैठा और अपने पास भी धन होने की बात स्वीकार करते हुए उसने अपने पास की एक हजार दीनारों की थैली उसके सामने रख दी। सुमति ने पोटली ले ली और मधुर शब्दों में बोली अभी तो रात्रि का प्रथम प्रहर है, लोग जाग रहे हैं, मेरे पिता आदि भी जाग रहे हैं, अत: अभी चलना खतरे से खाली नहीं है। अभी थोड़ी देर अपनी-अपनी जगह जाकर हम विश्राम कर लें। रात कुछ गहरा जाने के बाद तथा लोगों के नींद में डूब जाने के बाद मैं आपके पास आऊँगी और तब अपन दोनों चुपचाप भाग चलेंगे।

लौकिक कार्यों में चतुर सुमति ने उस चोर को तो अपने पास से विदा किया और दीनारों की पोटली अपने पिता चंडकीर्ति कोतवाल को सौंपते हुए कौन चोर है यह भी बता दिया। सुबह होते ही कोतवाल चंडकीर्ति ने चोर को माल सहित ले जाकर राजा के सामने पेश किया और राजा ने उसे फाँसी की सजा सुनाई। – इसप्रकार यह सम्पूर्ण कहानी उस कोतवाल ने नागश्री व उसके पिता को सुनाई।

यह सुनकर नागश्री ने पिताजी से कहा – यही व्रत तो मैंने लिया है कि किसी दूसरे की वस्तु को उसकी इजाजत के बिना नहीं लेना। चोरी से नहीं लेना, क्योंकि यह भी पाप है और पाप का फल वर्तमान तथा भविष्य में दुख ही है। इसलिए यह व्रत भी मैं नहीं छोड़ूँगी। अत: पिता ने इस व्रत को भी रखने की स्वीकृति दे दी। ●

2 सङ्गति कीजे साधु की....
(शकटाल मुनि की कथा पर आधारित)

पाटलिपुत्र (पटना) के राजा नन्द के दो मन्त्री थे। एक शकटाल और दूसरा वररुचि। शकटाल जैन था, उसे जैनधर्म के प्रति अचल श्रद्धा और प्रीति थी। दूसरा वररुचि जैन नहीं था, इसलिए उसे जैनधर्म से, जैनधर्म के माननेवालों से द्वेष था, ईर्ष्या थी। इस कारण शकटाल और वररुचि की कभी नही बनती थी; दोनों एक-दूसरे से अत्यन्त विरुद्ध थे।

एक दिन जैनधर्म के परम विद्वान महापद्म मुनिराज अपने संघसहित पटना नगर के वन में पधारे। शकटाल, मुनिभक्ति से प्रेरित होकर एवं धर्मश्रवण की आकांक्षा से मुनिराज के दर्शन करने के लिए वन में गया। उसने बड़ी भक्ति के साथ मुनिराज की पूजा-वन्दना की और मुनिश्री के समीप बैठकर धर्म का पवित्र उपदेश सुना।

अपने पवित्र उपदेश में मुनिराज ने कहा - 'हे भव्यजीवो ! यदि तुम संसार के दुःखों से भयभीत हो तो आज ही श्रामण्य अङ्गीकार करो। अहो ! जिस दिशा में क्षण-क्षण में अन्तर्मुख होकर आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्दरूप अमृत पिया जाता है, उस दशा को अङ्गीकार किये बिना कभी भी संसार-परिभ्रमण का अन्त नहीं है।'

अहा ! आत्मा सम्पूर्ण निवृत्तस्वरूप तत्त्व है, उसे पर्याय में अनुभव करने के लिए अन्तरोन्मुखी प्रयत्न करो। अपने को जानो, पहिचानो, अपने में ही जम जाओ, रम जाओ - यही सुखी होने का एकमात्र उपाय है।

मुनिराज के उपदेश का शकटाल के धार्मिक एवं कोमल हृदय पर

बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। वह उसी समय संसार का सब मायाजाल तोड़कर दीक्षा ग्रहण करके मुनि हो गया। इसके बाद उसने अपने गुरु द्वारा सिद्धान्तशास्त्र का अच्छा अभ्यास किया। थोड़े ही दिनों में शकटाल मुनि ने कई विषयों में बहुत ही अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। गुरु भी इनकी बुद्धि, विद्वतता, तर्कशक्ति और स्वभाविक प्रतिभा देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने अपना आचार्यपद अब इन्हें दे दिया।

आत्मसाधना में संलग्न शकटालाचार्य ने धर्मोपदेश और तत्त्वप्रचार के लिए अनेक देशों, शहरों और गाँवों में भ्रमण किया। मुनिराज का आत्महितकारी उपदेश श्रवण करके अनेक जीव आत्महित साधक पवित्र मार्ग में लगे। मुनिराज के सातिशय प्रभावना योग से दुर्गति के दुःखों का नाश करनेवाले पवित्र जैनधर्म का प्रकाश सर्वत्र व्याप्त हो गया। इस प्रकार धर्म प्रभावना करते हुए वे मुनिराज एक बार फिर पटना पधारे। एक दिन शकटाल मुनि, राजा के अन्तःपुर में आहार करके तपोवन की ओर जा रहे थे। तभी मन्त्री वररुचि ने उन्हें देख लिया। इस पापी ने पुराने बैर का बदला लेने का यह अच्छा अवसर देखकर राजा नन्द से कहा –

'महाराज ! आपको कुछ पता है कि इस समय अपना पुराना मन्त्री पापी शकटाल भीख के बहाने आपके अन्तःपुर में, रनवास में घुसकर न जाने क्या अनर्थ कर गया है ! मुझे तो उसके चले जाने के बाद ये समाचार मिले, नहीं तो मैं कभी का पकड़वा कर उसे उसके पाप की सजा दिलवा देता है। आपको ऐसे धूर्तों के लिए चुप बैठना उचित नहीं है।'

सच है, दुर्गति में जानेवाले पापी लोग बुरे से बुरा कोई काम करने से नहीं चूकते।

राजा नन्द ने अपने मन्त्री के बहकावे में आकर क्रोधपूर्वक उसी

समय एक नौकर को आज्ञा की कि वह जाकर शकटाल को जान से मार दे।

अरे.... रे ! मूर्ख पुरुष, दुर्जनों द्वारा उकसाये जाने पर कृत्य अकृत्य और भले–बुरे का कुछ भी विचार न करके, अविवेकी होकर दूसरों पर अन्याय करने के रूप में स्वयं ही अपने नरक के द्वार खोल लेता है, सो अभी तो राजा नंद ने भी वही किया, पर थोड़े ही समय बाद जब उसे सच्चाई का पता चलेगा तब वह प्रायश्त्ति करने सन्मार्ग पर लग जायेगा। हमने भी अनादि काल से आज तक राजा नंद की तरह चार गति के ही द्वार खोले हैं, अब हमें भी शीघ्रता से राजा नंद की ही तरह सनमार्ग पर लगना है, तभी हमारा जीवन सार्थक व सफल होगा।

शकटाल मुनि ने जब उस घातक मनुष्य को अपनी ओर आते देखा, तब उन्हें विश्वास हो गया कि यह मुझे मारने को आ रहा है और यह सब कृत्य मन्त्री वररुचि का है।

जबतक वह घातक, शकटाल मुनि के निकट पहुँचा, उसके पहले ही वे सावधान होकर समाधिस्थ हो गये। घातक अपना काम पूरा कर वापस लौट गया। इधर शकटाल मुनि ने समाधि से शरीर त्याग कर स्वर्ग–लाभ प्राप्त किया।

अहो ! दुष्ट पुरुष अपनी ओर से कितनी ही दुष्टता क्यों न करें' परन्तु उससे सत्पुरुषों को कुछ हानि न पहुँचकर लाभ ही होता है।

जब राजा नन्द को सम्पूर्ण सत्य वस्तुस्थिति का ज्ञान हुआ और उसने सब बातों की गहरी छान–बीन की, तब उसे पता चल गया कि शकटाल मुनि का कोई दोष नहीं था, वे सर्वथा निरपराध थे। इसके पूर्व जैन मुनियों के सम्बन्ध में जो उसकी मिथ्या धारणा हो

गयी थी, जिस कारण उसे मुनियों पर बेहद क्रोध हो रहा था, उस सब को हृदय से दूर कर, वह अब बहुत पश्चाताप करने लगा। उसने अपने पापकर्मों की बहुत निन्दा की। इसके बाद वह श्रीमहापद्म मुनि के समीप गया। अत्यन्त भक्ति से उसने उनकी पूजा-वन्दना की और सुख के कारणभूत पवित्र जैनधर्म का उपदेश सुना।

धर्मोपदेश से प्रभावित होकर उसने श्रावक के व्रत धारण किये। अब जैनधर्म पर उसकी अचल श्रद्धा हो गयी, वह भी मुक्तिपथ का अनुगामी बन गया।

देखो, कुसङ्ग का प्रभाव ! यह जीव कुसङ्ग में पड़कर, अपने हिताहित का विचार किये बिना ही अनेक कुत्सित पाप कर्मों में लिप्त हो जाता है। यदि स्वयं की सत्पात्रता हो तो अच्छी सङ्गति ग्रहण करके सत्कर्मों में संलग्न हो जाता है। इसीलिए **ज्ञानीजनों ने अपने से गुणाधिक की सङ्गति का पावन उपदेश दिया है। गुणहीन की सङ्गति हमें भी निम्न स्तर पर खड़ा करने का साधन है। इसीलिए कहा है कि सङ्गति कीजे साधु की.....!**

दो साधर्मी

एक साधर्मी ने दूसरे साधर्मी से पूछा – ''आत्मा अपनी सम्यक्त्वादि पर्याय का कर्त्ता है – क्या यह बात सच्ची है?''

दूसरे ने कहा – ''हाँ, कर्त्ता-कर्म के स्वरूप की अपेक्षा यह सत्य है कि आत्मा अपनी पर्याय का कर्त्ता है; लेकिन जहाँ अभेद अनुभूति का वर्णन हो, वहाँ कर्त्ता-कर्म का भेद नहीं आता, उसमें तो भेद के बिना एक अभेद सत्वरूप शुद्ध आत्मा ही है।'' (इस चर्चा से वे दोनों खुश हुए)

3 रत्नत्रय की उपासना
(भगवान मल्लिनाथ के पूर्वभव का प्रेरक प्रसंग)

मिथिलापुरी के राजा कुम्भ और महारानी सुप्रभा के पुत्र मल्लि कुमार, जो कि इस भरतक्षेत्र के 19वें तीर्थङ्कर हुए, वे पूर्वभव में विदेहक्षेत्र में वैश्रमण नामक राजा थे, वहाँ उन्होंने एक मुनिराज के श्रीमुख से अष्टाङ्ग सहित सम्यग्दर्शन, अष्टाङ्ग सहित सम्यग्ज्ञान और तेरह अंग सहित सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय धर्म का स्वरूप श्रवण किया था; तत्पश्चात् स्वयं भी संसार से विरक्त होकर, रत्नत्रयधर्म प्रगट करके, दर्शनविशुद्धि आदि सोलह उत्तम भावनापूर्वक तीर्थङ्कर नामकर्म बाँधकर तीसरे भव में मल्लिनाथ तीर्थङ्कर होकर मोक्षपुरी पधारे। उनकी यह कथा रत्नत्रय के प्रति बहुमान की भावना से यहाँ प्रस्तुत है।

जम्बूद्वीप के दक्षिण भाग में इस भरतक्षेत्र में हम रहते हैं। इसके पूर्वभाग में पूर्व विदेहक्षेत्र है। वहाँ वीतशोका नामक एक सुन्दर नगरी है। मोक्ष के अभिलाषी धर्मात्माओं से परिपूर्ण इस नगरी में अनेक मुनिराज विचरण करते हैं.... ऊँचे-ऊँचे अनेक जिनमन्दिरों पर धर्मध्वजा फहरा रही है और फड़फड़ा कर मानो कि देवों को आमंत्रण दे रही है –

''देवो ! तुम्हें देवलोक से मुक्ति प्राप्त नहीं होती है, अत: उसे प्राप्त करने के लिए यहाँ आओ.... इस नगरी में केवली भगवन्त सदा विचरण करते हैं। यहाँ वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु के अतिरिक्त दूसरी कोई प्रवृत्ति दिखायी नहीं देती.... एक शुद्ध जैनधर्म ही निरन्तर प्रवर्तता है।''

तीर्थङ्कर मल्लिनाथ का आत्मा स्वयं पूर्वभव में इस मनोहर वीतशोका नगरी का राजा था.... उसका नाम वैश्रमण था। वे आत्मा के ज्ञाता थे और उनका चित्त सदा रत्नत्रय की भावना में लीन रहता था।

एक दिन राजा वैश्रमण राज्यसभा में विराजमान थे। उसी समय उनके उद्यान का माली आनन्दपूर्वक आकर कहने लगा– हे स्वामी! मैं एक उत्तम समाचार लेकर आया हूँ। आपकी नगरी के चन्दन वन में महाभाग्य से आज सुगुप्ति नामक महामुनिराज संघ सहित पधारे हैं। **जिसप्रकार साधक जीवों का बगीचा रत्नत्रयरूप परिणति से खिल उठता है, उसीप्रकार सम्पूर्ण उद्यान भी मुनिराज के शुभागमन से अनेकों सुन्दर फल–फूलों से खिल उठा है।** सारा उद्यान अत्यन्त शोभास्पद प्रतीत हो रहा है।

वनमाली के मुख से मुनिराज के शुभागमन के समाचार सुनते ही अत्यन्त हर्षित होकर राजा ने उस माली को मूल्यवान पुरस्कार प्रदान किया और स्वयं सिंहासन से उतरकर मुनिराज की परोक्ष वन्दना की। तत्पश्चात् सम्पूर्ण नगरी में आनन्दभेरी बजवाकर समस्त नगरजनों सहित धूमधाम से मुनिराज की वन्दना के लिये गमन किया। मुनिराज के समीप जाकर सबने अत्यन्त भक्तिभावपूर्वक उनकी वन्दना–पूजन और भक्ति की। तत्पश्चात् धर्मोपदेश श्रवण की इच्छा से मुनिराज के समीप बैठ गये।

करुणामूर्ति मुनिराजश्री ने समस्त धर्म पिपासुओं को मङ्गल आशीर्वाद प्रदान करते हुए कहा – हे राजन् ! तुम्हें मोक्ष के कारणरूप रत्नत्रयधर्म की वृद्धि हो।

मुनिराज के आशीर्वाद से राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ और कहा– हे प्रभु ! आपके श्रीमुख से रत्नत्रयधर्म का स्वरूप सुनने की मुझे आकांक्षा हुई है। अतः अनुग्रह करके रत्नत्रयधर्म का स्वरूप बतलाने की कृपा करें।

मुनिराज के श्रीमुख से मानो अमृत झरता हो, उसी प्रकार वाणी निकलने लगी। उन्होंने कहा – हे राजन् ! सुनो, यह संसार अनेक

प्रकार के दुःखों से भरा हुआ है। उन दुःखों से छुड़ाकर अनन्त सुख के धाम मोक्षदशा को प्राप्त करानेवाली परिणति का नाम धर्म है। वह धर्म अर्थात् मोक्षमार्ग – सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र ऐसे त्रिरत्नस्वरूप है। उसे पहचानकर उसकी आराधना करो।

अत्यन्त जिज्ञासापूर्वक राजा ने पूछा – हे प्रभु ! इस रत्नत्रय धर्म में से प्रत्येक धर्म का स्वरूप आपके श्रीमुख से श्रवण करने की सभा को आकाँक्षा है।

करुणामूर्ति सुगुप्ति मुनिराज कहने लगे – हे भव्य ! सुनो, रत्नत्रय धर्म में सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन है। सर्वज्ञ वीतराग जिनवरदेव, निर्मोही निर्ग्रन्थ रत्नत्रयवन्त गुरु और उनकी वाणी तथा वाणी द्वारा कथित जीव-अजीव आदि सात तत्त्वों का स्वरूप भलीभाँति पहचानकर, उनमें से सारभूत भूतार्थ निज शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति भूतार्थ है। शुद्धनय अर्थात् पर्यायमात्र से पार और गुणभेद से भी भिन्न एकरूप त्रिकाली ध्रुव वस्तु का अवलम्बन करना अर्थात् उसी में अपनापन स्थापित करना सम्यग्दर्शन कहलाता है। अरे, राग की तो बात ही क्या? **सम्यग्दर्शन के घर में स्वयं सम्यग्दर्शन के लिए भी कोई जगह नहीं है। उसने अपना कोना-कोना ध्रुव के लिए खाली कर दिया है।**

इस सम्यग्दर्शन के आठ अंग हैं–

❖ तलवार की तीक्ष्ण धार जैसा श्रेष्ठ जिनमार्ग ही सन्मार्ग है, उसमें किसी भी प्रकार की शंका रहित निश्चल रुचि करना **निःशंकित अंग** है।

❖ धर्म के फल में संसार सुख की वाँछा नहीं करना, किसी भी विषय में अर्थात् पुण्य-फल में सुख नहीं मानना, वह **निःकांक्षित अंग** है।

❖ स्वभाव से ही मलिन शरीरादिक को देखकर धर्मात्मा के प्रति

घृणा नहीं करना, अपितु उनके गुणों में प्रीति करना, वह **निर्विचिकित्सा अंग** है।

❖ सुखकारक जिनमार्ग और दुःखकारक मिथ्यामार्ग का स्वरूप पहचानना और मिथ्यामार्ग में किसी भी प्रकार से सम्मति नहीं देना अथवा उसकी प्रशंसा नहीं करना, वह **अमूढ़दृष्टि अंग** है।

❖ दूसरे साधर्मी के अवगुणों को ढाँकना, वीतरागभावरूप जिनधर्म की वृद्धि करना तथा धर्म या धर्मात्मा की निन्दा के प्रसङ्ग को किसी भी उपाय से दूर करना, वह **उपगूहन अंग** है।

❖ किसी भी तीव्र दुःख इत्यादि कारण से अपना या पर का आत्मा धर्म में शिथिल होता दिखे तो वैराग्यभावना तथा जिनधर्म की महिमा द्वारा उसे धर्म में निश्चल–स्थिर करना, वह **स्थितिकरण अंग** है।

❖ अपने साधर्मी भाई–बहिनों के प्रति हृदय में उत्तमभाव रखकर उनका आदर–सत्कार करना, वह **वात्सल्य अंग** है।

❖ अपनी शक्ति द्वारा जैनधर्म की शोभा बढ़ाना, अज्ञान को दूर करके सम्यग्ज्ञान की महिमा प्रसिद्ध करके जिनशासन का उद्योत करना, वह **प्रभावना अंग** है।

मुनिराज के मुख से सम्यग्दर्शन का स्वरूप, विषय और आठ अंगों का स्वरूप सुनकर राजा वैश्रमण अत्यन्त प्रमुदित हुआ। गद्गद् वाणी से मुनिराज को प्रणाम करते हुए उसने पूछा – हे प्रभु ! सम्यग्दर्शन के आठ अंग और उसकी महिमा सुनने से मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई है। अब, कृपा करके सम्यग्दर्शन के ही साथ प्रगट होनेवाले सम्यग्ज्ञान और उसके आठ अंगों का स्वरूप भी कहने का अनुग्रह करें।

राजा की धर्म पिपासा देखकर अकारण करुणा करके मुनिराज

ने कहा – हे राजन् ! जिनमार्ग में देव-शास्त्र-गुरु तथा उनके द्वारा कथित जीवादि नौ तत्त्वों का स्वरूप पहचानकर, परभावों से भिन्न अपने ज्ञानमय शुद्ध आत्मा की अनुभूतिरूप ज्ञान, वह सम्यग्ज्ञान है। सम्यग्दर्शन के साथ ऐसा सम्यग्ज्ञान नियम से होता है। वह सम्यग्ज्ञान आठ प्रकार के विनय से सुशोभित होता है।

1. शब्द की शुद्धि, 2. अर्थ की शुद्धि, 3. शब्द तथा अर्थ दोनों की शुद्धि, 4. योग्य काल में अध्ययन, 5. उपधान, अर्थात् कोई नियम तपसहित अध्ययन, 6. शास्त्र के विनयपूर्वक अध्ययन, 7. गुरु के प्रति उपकार बुद्धि प्रगट करना अर्थात् ज्ञानदाता गुरु का नाम आदि नहीं छुपाना, वह अनिह्नवन और 8. स्तुति पूजा इत्यादि समारोह द्वारा देव, गुरु, आगम का बहुमान प्रसिद्ध करना। इसप्रकार आठ प्रकार के विनय-आचार द्वारा सम्यग्ज्ञान सुशोभित होता है।

सम्यग्ज्ञान, अमृत के समान है। वही मोक्षमार्गी जीव की आँख है। सम्यग्ज्ञान चक्षु द्वारा सम्पूर्ण पदार्थों का यथार्थ ज्ञान होता है और वस्तुस्वरूप पहचानकर मोक्षमार्ग की साधना होती है। अतः नित्य ही सम्यग्ज्ञान की आराधना करना चाहिए।

इसीप्रकार सम्यग्चारित्र के स्वरूप का भी उपदेश दिया।

रत्नत्रय का स्वरूप समझकर राजा वैश्रमण को अत्यन्त हर्ष हुआ। मुनिराज के श्री चरणों में भक्ति भावपूर्वक वन्दना करके प्रजाजनों के साथ राजा अपने राजमहल में आ पहुँचा। उसे मुनिधर्म धारण करने की भावना प्रबल होने पर भी वह मुनिधर्म धारण न कर सका, अत: उसने रत्नत्रय-व्रत विधान का महान उत्सव करके उसके उद्यापन द्वारा जैनशासन की महान प्रभावना की। उनके वैराग्य प्रसंग को जानने के जिज्ञासु अगली कथावाचन करें। जहाँ सम्यग्चारित्र का वर्णन भी पढ़ने मिलेगा।

I रत्नत्रय की उपासना
(राजा वैश्रमण का वैराग्य एवं तीर्थंकर प्रकृति का बंध)

जब से राजा वैश्रमण मुनिराज से रत्नत्रय का उपदेश सुनकर आया तभी से उसके चित्त में मुनिधर्म धारण करने की भावना नितप्रति प्रबल हो रही थी। लगता है आज वह शुभदिन आ गया है, आज उनके मुनि बनने की भावना साकार होनेवाली है। शायद इसीलिए आज वे वन-विहार के लिये जा रहे हैं।

अरे, मैं यह क्या देख रहा हूँ ? ये क्या ? वन-विहार जाते समय मार्ग में जो सुन्दर बटवृक्ष देखा था वही हरा-भरा वृक्ष अब (वन-विहार से वापस आते समय) बिजली गिरने से भस्मीभूत हो गया है।

अहा ! संसार की ऐसी क्षणभंगुरता देखकर राजा वैश्रमण का चित्त संसार से एकदम विरक्त हो गया। वे विचार करने लगे, अरे ! इस बटवृक्ष की तरह देखते-देखते यह शरीर, राजपाट आदि संयोगी चीजें क्षणभर में काल का ग्रास बन जानेवाली हैं। इस क्षणभंगुर संसार में कोई भी संयोग शाश्वत् दृष्टिगोचर नहीं होता। एकमात्र निज शुद्ध आत्मा ही शाश्वत् ध्रुव, टंकोत्कीर्ण पदार्थ है, जिसका अवलम्बन संसार के अभाव का एकमात्र कारण है। जगत् में कोई शरण देनेवाला नहीं है। शाश्वत् शरण तो निज शुद्ध आत्मा ही है - इत्यादि प्रकार से उत्तम बारह वैराग्य भावनाओं के चिन्त्वनपूर्वक राजा वैश्रमण संसार, शरीर, भोगों के प्रति एकदम उदासीन हो गये। उनका मन भगवती जिनदीक्षा अङ्गीकार करने के लिये तत्पर हो गया। अतः समस्त राजपाट का त्याग करके, राजा ने वन की ओर प्रयाण किया।

दूर से ही एक शिला पर श्रीनाग नामक मुनिराज को ध्यानस्थ देखकर राजा का मन अत्यन्त प्रमुदित हुआ और जैसे निधि पाकर

दरिद्र मनुष्य के हर्ष का पारावार नहीं रहता; इसी प्रकार करुणामूर्ति मुनिराज के दर्शनमात्र से राजा को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। मुनिराज के समीप पहुँच कर अत्यन्त भक्तिभावपूर्वक उन्होंने मुनिराज के चरणों में अपनी वन्दना समर्पित करते हुए कहा – हे प्रभु ! इस संसार में परिभ्रमण करते–करते मैं थक गया हूँ। अब इस जन्म–मरण के असह्य दुःख सहन नहीं होते; अतः मैं आपके श्री चरणों में संसारवास का विनाश करनेवाली जिनदीक्षा अङ्गीकार करने आया हूँ।

मुनिराजश्री ने कहा – हे वत्स, तूने निज आत्महित के लिये यह उत्तम विचार किया है। वास्तव में यदि दुःखों से परिमुक्त होने की इच्छा है तो श्रामण्य ही एकमात्र मार्ग है। तुम भी उसी मार्ग के पथिक बनकर अवश्य मुक्ति सुन्दरी का वरण करोगे। दीक्षा देने से पूर्व मुनिराज श्रीनाग ने राजा वैश्रमण को निश्चय–व्यवहार स्वरूप सम्यग्चारित्र का स्वरूप उपदेशित किया, जिसका सार इसप्रकार है–

हे राजन् ! सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानपूर्वक शुद्धोपयोग द्वारा आत्मस्वरूप में लीन होना – विचरण करना वह सम्यग्चारित्र है। **चारित्र साक्षात् धर्म है और वह मोह–क्षोभरहित आत्मा का साम्यभावरूप परिणाम है।** उस चारित्र में राग नहीं है।

मुनियों को ऐसे शुद्धभावरूप चारित्र के साथ हिंसादि समस्त पापों का अभाव और अहिंसादि महाव्रतों का पालन होता है। इस कारण व्यवहार से चारित्र के तेरह प्रकार कहे जाते हैं। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह – यह पञ्च महाव्रत; मनगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति – ये तीन गुप्तियाँ; ईर्या, भाषा, ऐषणा, आदाननिक्षेपण, और प्रतिष्ठापन – ये पाँच समितियाँ। इसप्रकार तेरह प्रकार का व्यवहारचारित्र होता है।

यहाँ यह बात विशेषरूप से ध्यान रखने योग्य है कि अन्तरंग में तीन

कषाय चौकड़ी के अभावपूर्वक शुद्धपरिणति की विद्यमानता में ही इन तेरह प्रकार के शुभभावरूप परिणामों में व्यवहारचारित्र का उपचार किया जाता है। व्यवहारचारित्र अर्थात् वास्तव में अचारित्रभाव में किया गया चारित्र का उपचार। यह शुद्धभावरूप वीतरागचारित्र साक्षात् मोक्षसुख का कारण है... इसकी महिमा अपरम्पार है। इस वीतराग चारित्र के साथ भूमिकानुसार पाये जानेवाला तेरह प्रकार का शुभ भावरूप व्यवहारचारित्र बन्ध का अर्थात् स्वर्ग प्राप्ति का कारण है।

हे भव्य ! इसप्रकार सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का स्वरूप बतलाया। इन तीनों को तुम रागरहित जानो।

हे मुमुक्षुजीवो ! रत्नत्रय की अचिन्त्य महिमा जानकर उससे आत्मा को अलंकृत करो। सम्यग्दर्शनरूपी हार को तो गले लगाओ; सम्यग्ज्ञान के कुण्डल कानों में पहनो; और सम्यक्चारित्ररूपी मुकुट को मस्तक पर धारण करो। यह रत्नत्रय ही सिद्धान्त का सर्वस्व है। रत्नत्रय ही जीव का सच्चा जीवन है। शुद्ध निश्चयरत्नत्रय शुद्धात्मा के ही आश्रित होने से परम उत्तम है और मुक्ति का साक्षात् कारण है। उसकी प्राप्ति आत्मध्यान में होती है; इसलिए मुमुक्षु जीवों को पुरुषार्थपूर्वक इसकी आराधना करना चाहिए।

यह सम्यग्दर्शन–सम्यग्ज्ञान–सम्यक्चारित्र.... जैनधर्म के सर्वोत्तम तीन रत्न.... आत्मा को महान आनन्द प्रदाता है, इनकी महिमा लोकोत्तर है। यह रत्नत्रय सर्व मुमुक्षुओं का मनोरथ है। इस रत्नत्रय की प्राप्ति के लिये चक्रवर्ती भी छह खण्ड के साम्राज्य और चौदह रत्नों का अत्यन्त सहजता से परित्याग कर देते हैं। अहा.... इन्द्र भी जिसके लिए तरस रहे हों, उस रत्नत्रय की प्राप्ति ही जैनशासन का सार है। वही जैनधर्म है। अहो ! ऐसे सम्यक् रत्नत्रय के एक अंश की प्राप्ति से भी जीव संसार समुद्र पार होने का मार्ग पा जाता है।

अहा ! जिस मूल्य द्वारा जीव को अनन्त काल का मोक्षसुख प्राप्त होता है, उस रत्नत्रय की क्या बात ! समस्त जिनवाणी का सार एक शब्द में कहना हो तो वह है '**रत्नत्रय**' उसी का विस्तार और उसी की प्राप्ति का उपाय जिनागम में भरा है।

वाह ! जीव की शोभा के लिए वीतरागी रत्नत्रय ! तुम्हारे समान सुन्दर दूसरा कोई आभूषण नहीं है। ऐसे रत्नत्रय द्वारा आत्मा को शृंगारित करने के लिए कहा है कि हे भव्य ! दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप मोक्षपंथ में आत्मा को जोड़ ! जिनेन्द्र भगवन्त दर्शन, ज्ञान, चारित्र को मोक्षमार्ग कहते हैं क्योंकि वे आत्माश्रित होने से स्वद्रव्य है। जो जीव अपने चारित्र, दर्शन, ज्ञान में स्थित है, वह स्वसमय है – ऐसा हे भव्य तू जान... और यह जानकर तू भी स्वसमय हो जा।

इस जगत की समस्त दुर्लभ वस्तुओं में रत्नत्रय सबसे दुर्लभ है। रत्नत्रय की आराधना नहीं करने से जीव दीर्घ काल तक संसार में परिभ्रमण करता है। रत्नत्रय की आराधना करनेवाला जीव, आराधक है और उसकी आराधना का फल केवलज्ञान है।

इसप्रकार सम्यग्चारित्र का स्वरूप सुनकर और मुनिराज के समीप जिनदीक्षा धारण करके राजा वैश्रमण आत्मध्यानरूप शुद्धोपयोग द्वारा सम्यक् रत्नत्रयरूप दशा प्रगट करके मुक्तिमार्ग के साक्षात् आराधक बन गये। रत्नत्रयधारी उन मुनिराज ने दर्शनविशुद्धि आदि सोलहकारण भावनाओं द्वारा तीर्थङ्कर नामकर्म का बन्ध कर लिया और द्वादशांग के ज्ञान से श्रुतकेवली भी हो गये।

अनुक्रम से समाधिमरण करके वे वैश्रमण मुनिराज अपराजित विमान में अहमिन्द्र हुए पश्चात् इस भरतक्षेत्र में बंग प्रान्त की मिथिला नगरी में अवतार लेकर रत्नत्रय धर्म के प्रताप से उन्नीसवें मल्लिनाथ तीर्थङ्कर होकर अपनी दिव्यध्वनि द्वारा जगत् के जीवों को रत्नत्रय का मार्ग बताकर सिद्धालय में विराजमान हुए, उनकी जय हो। **– ब्र.हरिलाल जैन**

4 सुबह का भटका...शाम को...

(मुनिराज के समागम से नागदत्त सेठ मुनि बन गया)

बहुत समय पूर्व उज्जैन नाम की प्रसिद्ध नगरी में धन्य-धान्य से परिपूर्ण नागदत्त नाम का सेठ रहता था। नागदत्त ने अपने परिश्रम व पुण्योदय से अपार धनराशि एकत्रित होने पर उसने एक दिन विचार किया कि धन की सार्थकता तभी हो सकती है, जब मेरे पास स्वयं का एक आलीशान महल हो; अतः उसने चतुर कारीगरों को बुलाया और आदेश दे दिया कि एक सात खण्ड का महल बनना चाहिए। यह महल इतना सुन्दर हो कि जिससे इसकी तुलना इस नगरी के अन्य भवनों से न की जा सके और मेरी कीर्ति मूर्तिमान होकर सदा इस संसार में विद्यमान रहे।

कारीगरों ने कई वर्षों में सुन्दर भवन तैयार किया। वह सात मंजिल का महल नगर में सबसे ऊँचा और मध्य में सुशोभित था। इसे देखने के लिए नगर निवासियों की भीड़ लगी रहती थी। सेठ नागदत्त का यश सारे नगर में व्याप्त था। एक दिन उसने सोचा कि इस महल में चित्रकारी होना भी आवश्यक है; अतः अच्छे-अच्छे चित्रकारों को बुलाकर चित्र बनाने की आज्ञा दी। सैकड़ों अच्छे कलाकार उस विशाल भवन में चित्रकारी करने में संलग्न हो गये। देश-विदेश के कलाकार यहाँ आकर अपनी कंचुकी की करामात दिखलाने लगे।

एक ओर सेठ नागदत्त अपने भोग-विलास में अपार धनराशि खर्च करते थे तो दूसरी ओर दान-धर्म में नितांत कंजूस। कोई भी भिखमंगा या याचक उनसे एक पैसा भी नहीं पा सकता था; पैसे की जगह वे लोगों को झिड़कियाँ देते रहते थे। पैसा देना तो अलग रहा, माँगनेवाले से बातचीत भी नहीं करते थे। उनके इस व्यवहार को सभी जानते थे; अतः नाना प्रकार की आलोचना-प्रत्यालोचना आती रहती थी। कोई उन्हें

कला–प्रेमी, कला–मर्मज्ञ कहता तो कोई कंजूस–मक्खीचूस और मनहूस कहता। इतना ही नहीं, कहीं दान न देना पड़े, इस लोभ से वे किसी धर्मसभा में भी नहीं जाते थे।

उनकी धर्मपत्नी यशोमति स्वभाव में अच्छी थी। उसकी इच्छा दान–पुण्य करने की रहती थी। उसने कई बार यह प्रयास किया कि पतिदेव भी दान–पुण्य के कार्यों में कुछ भाग लें, परन्तु उसका श्रम व्यर्थ गया। मित्रों ने भी नागदत्त को समझाने की चेष्टा की परन्तु वह हिमालय की उस चट्टान की भाँति अडिग था, जो धूप और वर्षा में समानरूप से खड़ी रहती है।

एक दिन नागदत्त अपने भवन में चित्रकारी का अवलोकन कर रहा था तथा विदेश से आये हुए चित्रकारों को नाना प्रकार के सुझाव दे रहा था। प्रातःकाल का समय था, सूर्योदय हुए बहुत कम समय हुआ था। बाल रवि की सुहानी किरणें भूखण्ड को स्वर्णमयी बना रही थीं। प्रातः की इस सुन्दर बेला में भित्ति के चित्रों की शोभा कई गुनी दिखलायी पड़ रही थी। जिन चित्रों में अभी तक रंग नहीं भरा गया था, वे खाली चित्र भी सूर्य की रश्मियों के कारण अपनी चमक–दमक से दर्शकों के मन को मोहित करते थे।

(2)

एक दिन सेठ जब अपने वैभव को देखकर प्रसन्न हो रहा था। तभी एक मुनिराज उस सेठ के भवन के पास से निकले और सेठ को देखकर मुस्कराये। मुनिराज का मुस्कराना नागदत्त सेठ को खटका। वह सोचने लगा कि साधु अकारण नहीं मुस्कराते, कोई बात होनी चाहिए। मुझे देखकर ये मुस्कराये हैं अतः अवश्य मेरे सम्बन्ध में कोई बात है, आज मध्याह्न में जाकर मैं मुस्कराने का कारण पूछूँगा। वीतरागी साधु मुस्कराते हुए नहीं चलते। थोड़ी देर तक तो वह सेठ इस प्रकार ऊहापोह करता

रहा, परन्तु मुनिराज के पास जाकर इस तथ्य को जान लेने की विचारधारा से उसे सान्त्वना मिली और वह पूर्ववत् कार्य में लग गया।

अब आहार चर्या का समय हुआ, नागदत्त के परिवार ने मुनिराज का पड़गाहन किया, जब मुनिराज निर्दोष आहार ग्रहण करके चैत्यालय में जा रहे थे तब सेठ अपने पुत्र को गोद में बिठकार प्यार कर रहा था, पुत्र ने गोद में पेशाब कर दी, जिससे सारे कपड़े गीले हो गये। मुनिराज इस दृश्य को देखकर भी मुस्कराये।

नागदत्त को मुनिराज के मुस्कराने से इस बार भी चिन्ता हुई। उसने अपनी पत्नी से कहा कि इस बात का पता लगाना चाहिये कि मुनिराज मुझे देखकर प्रातःकाल भी मुस्कराये और अब भी; इनके मुस्कराने का क्या कारण है? वीतरागी साधु अकारण नहीं मुस्कराते।

दोपहर में नागदत्त की दुकान पर एक बकरा भागकर आया और बैं–बैं करता हुआ नागदत्त के चारों ओर चक्कर काटने लगा। जो कसाई उस बकरे को लेकर जा रहा था, उसने कहा कि सेठजी! यदि इसकी कीमत तुम दे दो तो बकरे को मैं तुम्हें दे सकता हूँ। यह बकरा तुमसे बहुत प्रेम कर रहा है और दुकान से जाना नहीं चाहता है।

सेठ ने समझा कि कसाई मुझे फँसा रहा है और बकरे की कीमत लेकर यों ही जाना चाहता है। इन लोगों का कोई भरोसा नहीं। इस बकरे को भी देखो, यह मेरे चारों ओर चक्कर लगा रहा है। कसाई इसे पकड़ना चाहता है, परन्तु यह बैं–बैं करता हुआ दुकान से बाहर नहीं निकल रहा, कभी इधर घुस जाता है, कभी उधर; मालूम पड़ता है कि अब डण्डा खाकर ही यहाँ से भागेगा। अतः डण्डा लेकर बकरे को दो–तीन जमा दिये। बकरा बैं–बैं करता हुआ कसाई के साथ चलने लगा।

इसी समय सामायिक क्रिया से निवृत्त हो मुनिराज भी मन्दिरों के दर्शनार्थ जा रहे थे। संयोगवश वे फिर नागदत्त की दुकान के सामने से

निकले, जब दुकान से बलपूर्वक उस बकरे को सेठ नागदत्त बाहर निकाल रहा था। इस दृश्य को देखकर भी मुनिराज को हँसी आ गयी। उनका यह हँसना नागदत्त को खटका। वह सोचने लगा कि क्या बात है जो आज मुनिराज मुझे देखकर तीन बार हँसे हैं? कोई कारण होना चाहिए? अतः मैं इनसे हँसने का कारण पूछता हूँ।

नागदत्त, मुनिश्री के पास गया और नमोस्तु करके धर्मलाभ का आशीर्वाद लेकर पूछने लगा – 'प्रभो ! आज आप मुझे देखकर तीन बार क्यों हँसे हैं? हँसने का क्या रहस्य था?'

मुनिराज बोले – प्रातःकाल जब तुम अपनी चित्रशाला में अनेक प्रकार के अधूरे चित्र देख रहे थे, तब मैं यह सोचकर हँसा था कि इन चित्रों के पूर्ण होने के पहले ही तुम इस पर्याय से चले जाओगे। **मोही जीव, संसार में कितना आसक्त रहता है कि वह संसार की वास्तविक स्थिति को नहीं समझता है।**

हे वत्स ! अब तुम्हारी आयु मात्र सात दिन की है, आज से सातवें दिन तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी। पाँचवें दिन तुम्हारे सिर में अपार वेदना उठेगी, जिसे सहन न कर सकने के कारण तुम्हारे हृदय की गति रुक जाएगी और इस पर्याय को तुम छोड़ दोगे।

प्रभो ! जब आप चर्या के लिए गये थे, तब मुझे देखकर आप क्यों हँसे थे ? मुनिराज बोले – मैं यह देखकर हँसा था कि तुम जिस पुत्र को इतना प्यार कर रहे हो, जिसके पेशाब करने पर तुम्हारे कपड़े पेशाब से भर गये थे, फिर भी तुम उसे गोद में लिए दुलार करते रहे, जबकि यह पुत्र तुम्हारा पूर्व जन्म का शत्रु है और बड़ा होने पर तुम्हारी सम्पत्ति को नष्ट कर देगा, बड़ा व्यसनी और जुआरी होगा।

प्रभो ! मन्दिरजी के दर्शनार्थ जाते समय आप क्यों हँसे थे ?

हे भाई ! कसाई जिस बकरे को बलपूर्वक ले जा रहा था और जो

बकरा तुम्हारे चारों ओर चक्कर लगा रहा था; तुम्हारे पास से जाना नहीं चाहता था, उसे तुम डण्डा मारकर भगा रहे थे, वह तुम्हारे पिता का जीव है। जब वह तुम्हारी दुकान के बाहर से निकला तो उसने तुमको पहचान लिया और इसलिए तुम्हारे चारों ओर चक्कर लगाने लगा था, वह अपने प्राण बचाना चाहता था, किन्तु तुम उसके भाव को नहीं समझ सके।

मुनिराज के वचनों को सुनकर नागदत्त उस कसाई के घर दौड़ा–दौड़ा गया। उसने कसाई से कहा भाई ! मूल्य लेकर उस बकरे को मुझे दे दो। कसाई ने कहा मैंने अभी थोड़ी देर पहले ही उसकी हत्या कर दी है, अब वह इस दुनियाँ में नहीं है। कसाई के इन वचनों को सुनकर नागदत्त को बहुत दुःख हुआ।

वह मुनिराज के पास आया और कहने लगा, प्रभो ! कल्याण क्या है ? उसका क्या उपाय है ?

मुनिराज ने कहा – हे वत्स ! सच्चे आत्मिकसुख की प्राप्ति ही कल्याण है। अपने आत्मा को जानना–मानना और उसी में जम जाना–रम जाना ही कल्याण का उपाय है। आत्मकल्याण के लिए अभी सर्व अवसर आया है; अतः अब व्यर्थ समय न गँवाते हुए आत्महितार्थ जिनदीक्षा अंगीकार करो। यद्यपि तुम्हारी आयु अब मात्र 7 दिन की

ही बची है, पर आत्मकल्याण के लिए तो अन्तर्मुहूर्त ही पर्याप्त है।

नागदत्त ने आत्मा का स्वरूप समझकर, मुनिदीक्षा अंगीकार कर घोर तपश्चरण किया। पाँचवे दिन उसके मस्तक में भयंकर वेदना हुई, जिसको शान्तभावपूर्वक सहता गया। सातवें दिन समाधि में स्थित था कि उसके हृदय की गति रुक गयी और इस पर्याय को छोड़कर उसकी आत्मा चल बसी।

समाधि और समता भाव के धारण करने से उसने वैमानिक देवों में जन्म धारण किया। इसीलिए तो कहा है कि सुबह का भटका शाम को घर आ जाये तो फिर वह भटका नहीं कहलाता।

अहा ! मुनिराज की एक क्षण की संगति ने ही उसे कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया ! सत्संगति दुनियाँ में क्या-क्या नहीं कर सकती!!

(सन्मति सन्देश से साभार)

शत्रुञ्जय पर्वत पर पाँच पाण्डव

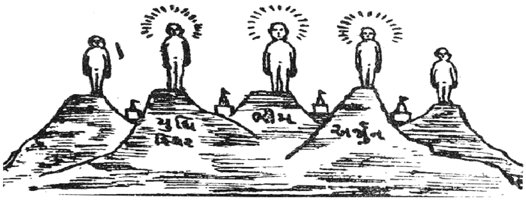

शत्रुञ्जय पर्वत पर पाँच पाण्डव ध्यान में मग्न हैं। पाँच पाण्डव में से तीन वीतरागी अहिंसा के द्वारा मोक्ष को प्राप्त हुए। दो पाण्डवों को सूक्ष्म रागरूप हिंसा रही, जिससे संसार में भव-धारण करना पड़ा।

इस दृष्टान्त से यह सिद्ध होता है कि किसी भी प्रसंग में वीतरागभावरूप शान्ति ही उत्कृष्ट धर्म है और वह ही इष्ट है। राग, भले ही उच्च-कोटी का क्यों न हो, लेकिन वह इष्ट नहीं है, उसमें शान्ति नहीं है; अतः वह अहिंसा भी नहीं है।

5 जैसी करनी... वैसी भरनी !

(परिणाम बदलते देर नहीं लगती)

सन्ध्या का समय था, आकाश कुछ लोहित सा मालूम पड़ रहा था। वृक्षों ओर बेलों पर चन्द्रमा की प्रभा छिटक रही थी। भक्त लोग सन्ध्या में लीन थे, स्थान-स्थान पर घण्टियाँ बज रही थीं। मजदूर दिनभर की मजदूरी कर घर वापिस लौट आये थे, कुछ उदास और कुछ प्रसन्न। गाय और भैंसों का दूध दुहा जा रहा था। दूध की देश में कोई कमी नहीं थी।

उस नगर में अनेक मन्दिर थे, उनके शिखर गगनचुम्बी थे जो दूर से ही धर्मपताका की गरिमा को व्यक्त कर रहे थे। नगर के मध्य में एक जैन मन्दिर था जो बहुत ही भव्य बना हुआ था। नगर सेठ ने उसे बनवाया था। उसकी नक्कासी एवं सुन्दरता की चर्चा दूर-दूर तक फैली हुई थी। कभी-कभी राजा भी दर्शनार्थ आया करता था।

उस मन्दिर की देखभाल एक माली परिवार करता था। उसके एक लड़की थी, जिसका नाम धनश्री था। जो मन्दिर में प्रातः और सायं सफाई किया करती थी उसके माँ-बाप तो जैनधर्म के बारे में बहुत कुछ जानते थे; परन्तु वह अभी अनजान थी, उसमें उतनी रुचि नहीं थी।

एक बार जब वह मन्दिर में सफाई कर रही थी, तब उसने एक मनुष्य को, जिसके शरीर पर कपड़े नहीं थे, वहाँ बैठे हुए देखा। उसे देखकर वह अनेक प्रकार से सोचने लगी कि यह कैसा आदमी है? जाने कहाँ से आ गया है, उठता भी तो नहीं है, बड़ा ढीट है। मैं कूड़ा झाड़कर सफाई कर रही हूँ और यह उठने तक का नाम नहीं ले रहा। उसने जोर से झाड़ना प्रारम्भ किया, लेकिन उस पर इसका भी कोई प्रभाव नहीं। आखिरकार वह झल्ला उठी और चिढ़कर बोली - न तो तू देखता है

और न सुनता है कि इतना कहने पर अलग उठकर चला जाए! अच्छा, ऐसे नहीं जायेगा और न हटेगा, अभी इसका मजा चखाती हूँ। उसने सारा कूड़ा–करकट उस मनुष्य के चारों ओर इकट्ठा कर दिया। इतने पर भी उसे सन्तोष नहीं मिला। एक कोठरी में पड़े–कूड़े को भी उसके ऊपर इतना डाल दिया कि जिससे उनका पूरा शरीर ढक गया और कुछ देर खड़ी देखती रही। जब देखा कि इस पर तो कोई प्रभाव ही नहीं पड़ा, तब वह अनेक प्रकार से बड़बड़ाने लगी।

यह मनुष्य और कोई नहीं था, वे एक दिगम्बर मुनिराज थे जो ध्यान कर रहे थे। उन्होंने उसे उपसर्ग समझा और वे अधिक ध्यानस्थ हो गये।

प्रातःकाल भक्तजनों का मन्दिर में आना प्रारम्भ हुआ। नगरसेठ भी दर्शन करने आये। उनकी दृष्टि अचानक उस ओर गयी, जहाँ उन्होंने बहुत धीरे से कूड़े को हिलते देखा, वे चौंके। उनको खड़ा देखकर अन्य स्त्री–पुरुष भी धीरे–धीरे वहाँ इकट्ठे होने लगे। लोगों की समझ में आया कि इसमें तो ध्यानस्थ मुनिराज हैं, जिनकी नाक की सांस से कूड़ा हिल रहा है। उन लोगों ने कूड़ा–करकट हटाया और मुनिराज की जय बोलने लगे। इसी बीच धनश्री आ गयी। उसने देखा कि सभी लोग उस आदमी के चरण छू रहे हैं, जय–जयकार बोल रहे हैं और वह आदमी भी प्रसन्न, शान्तचित्त दिखायी दे रहा है, क्रोध का नाममात्र भी उसके चेहरे पर नहीं है। वह दुविधा में पड़ गयी। अपने मन में बारम्बार अपनी भूल पर पश्चाताप करने लगी।

सहसा वह मुनिराज के चरणों में गिर पड़ी और अबोध बालिका की तरह रोने लगी। रोते–रोते कहने लगी – हे प्रभो ! यह पाप मैंने ही किया है, मुझे क्षमा कर दो; मैंने बहुत बुरा किया है। मैंने मुनिराज की बड़ी निन्दा की है, उनका अपमान किया है। लोगों के समझाने बुझाने पर भी उसका रोना बन्द नहीं हो रहा था।

मुनिराज बोले– पुत्री ! मैंने तो तुमसे कुछ नहीं कहा। तुम–सा भव्य

और कौन हो सकता है, जिसने अपने अपराध को स्वीकार कर लिया है। तुमने अपने पावन आँसुओं से अपने को पवित्र कर लिया है, अपने मन को धो डाला है। तुम धन्य हो !

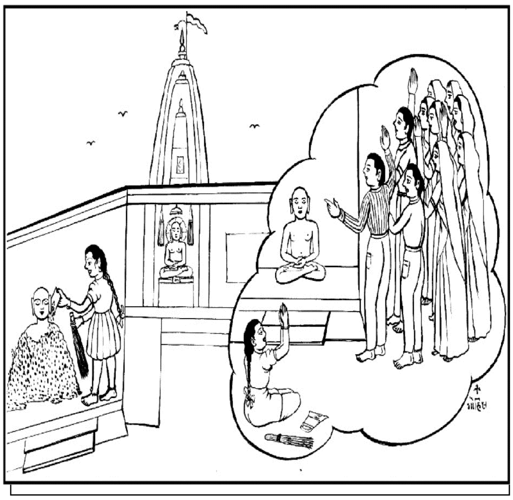

मुनिराज की मधुर वाणी सुनकर उसे धैर्य बँधा। उसने हृदय से मुनिराज की भक्ति की जिसे देखकर अनेक स्त्री–पुरुष भी मुनिराज की भक्ति में लीन हो गये और उस धनश्री का घर–घर में उदाहरण देने लगे।

मरकर वह धनश्री, नगर सेठ के यहाँ पुत्री के रूप में आई। वह बड़ी रूपवान थी। जब वह यौवन से सम्पन्न हो गयी, तब उसकी चर्चा दूर–दूर तक फैल गयी। उसके साथ विवाह करने के लिए सेठ–महासेठ ही नहीं राजे–महाराजे भी लालायित होने लगे। अभी उसका नाम वृषभसेना था।

उस समय उस प्रदेश का राजा उग्रसेन था। उसके कानों में भी उसके रूप एवं सच्चरित्रता की महिमा पहुँची। उसने राजदूत को भेजकर सेठजी को राजदरबार में बुलवा लिया। सेठजी अनेक संकल्प–विकल्पों के साथ दरबार में पहुँचे और राजा उग्रसेन का अभिवादन किया। राजा ने सेठ को पास बिठाया और अपने मन की बात सेठजी से कह डाली। सुनकर सेठजी प्रसन्न भी हुए और दुविधा में भी पड़े, परन्तु मुख पर दुविधा के भावों को नहीं आने दिया और विनम्रता से बोले – राजन् ! मैं आपके बराबर कहाँ हूँ। फिर भी मैं आपकी इच्छा का आदर करता

हूँ, लेकिन विवाहोत्सव के समय जो पशु–पक्षी पिंजरों में बन्द हैं तथा जो कैदी कारागर में बन्द हैं, उन सबको छोड़ना होगा और जब–जब अष्टाह्निका आदि धार्मिक पर्व आयेंगे, तब–तब भगवान की पूजन एवं स्वाध्याय आदि भी विशेष रूप से करने होंगे।

राजा ने सेठ की सारी बातें मान लीं। तदनुसार बन्दीगृह से सभी को मुक्त कर दिया गया, पशु–पक्षी पिंजरों से छोड़ दिये गये। राजा ने वृषभसेना को अपनी पट्टरानी घोषित कर दिया। सुखपूर्वक समय व्यतीत होने लगा। पुण्योदय से राजा उग्रसेन का लोहा सभी राजा मानने लगे।

राजा उग्रसेन के यहाँ अनेक छोटे राजाओं के यहाँ से समय–समय पर उपहार आने लगे। पुण्य का प्रताप इतना अधिक था कि उनका सबसे बड़ा शत्रु मेघपिंगल भी उनका मित्र बन गया।

एक बार उपहार में दो बहुत बढ़िया दुशाले राजा के यहाँ आए। उस समय राजा मेघपिंगल भी उनके पास बैठा था, उसका मन दुशालों पर ललचा आया। राजा उग्रसेन उसकी भावना समझ गये और उसको उसमें से एक दुशाला दे दिया। मेघपिंगल ने भी मनचाही वस्तु सहर्ष स्वीकार की।

एक बार राजा मेघपिंगल की रानी, वृषभसेना से मिलने राजमहल में आई। वृषभसेना ने उसका बहुत आदर–सत्कार किया। एक–दूसरे ने एक–दूसरे से मिलकर अत्यधिक प्रसन्नता व्यक्त की। बड़े आमोद–प्रमोद से समय बीतते देर नहीं लगी लेकिन राजा मेघपिंगल की रानी जाते समय भूल से वृषभसेना का दुशाला ओढ़ कर चली गयी। वृषभसेना का भी इस ओर ध्यान नहीं गया।

किसी कार्यवश राजा पिंगल, राजा उग्रसेन से मिलने राजदरबार में आए। राजा उग्रसेन ने उनका व्यवहार के नाते सम्मान किया परन्तु वे मन ही मन शंका करने लगे कि ये जो दुशाला ओढ़कर आए हैं, वह तो मेरी रानी वृषभसेना का है, इसके पास यह कैसे पहुँचा? शंका पर

शंका उसके मन को कचौटे जा रही थी। बातचीत में जो सरसता पहले आया करती थी, वह अब नाममात्र को भी नहीं थी।

राजा मेघपिंगल को राजा के मन की शंका समझते देर नहीं लगी। राजा का व्यवहार उसे खलने लगा। बात अधिक न बढ़े, इसलिए वह वहाँ से बिना कुछ कहे–सुने उठकर चला गया। इधर राजा उग्रसेन के क्रोध का ठिकाना नहीं था। क्रोध ने उन्हें किंकर्त्तव्य विमूढ़ बना दिया था, उसका विवेक समाप्त कर दिया था। वे भूल गए थे कि अचानक कोई निर्णय नहीं लेना चाहिए। दौड़े–दौड़े रानी वृषभसेना के महल में गये, वहाँ उन्होंने राजा मेघपिंगल का दुशाला रखा देखा, उसका सन्देह विश्वास में बदल गया।

सन्देह की भी महिमा अपरम्पार होती है, कि जो वस्तु थोड़ी देर पहले प्राणों से भी अधिक प्यारी थी, वही अब बहुत बुरी लग रही थी। उसको नष्ट करने के लिए न जाने क्या–क्या विचार राजा के मन में आए। अब वह एक पल भी वृषभसेना को देखना नहीं चाहता था। दाँत किटकिटाता हुआ, भौंहे ऊपर चढ़ाता हुआ, लाल–पीला होता हुआ वह राजा उग्रसेन, रानी वृषभसेना के महल से लौट पड़ा। वृषभसेना भी कुछ न समझ सकी और न कुछ सोच सकी, परन्तु राजा की बेरुखी पर उसे क्षणभर को कुछ शंका हुई, लेकिन वह शंका क्षणमात्र रहकर ही विदा हो गयी।

राजा ने अपने विश्वस्त कर्मचारियों को बुलाया और उन्हें आदेश दिया कि तुम रानी वृषभसेना को तीर्थयात्रा के बहाने किसी निर्जन जंगल में छोड़ आओ। राजा के आदेशानुसार रानी वृषभसेना को निर्जन जंगल में छोड़ दिया गया। वह अपनी कर्म–लीला पर बारम्बार सोचने लगी। ये कर्म कैसे विचित्र हैं? मनुष्य को कहीं पर भी नहीं छोड़ते! भगवान पार्श्वनाथ पर कमठ ने उपसर्ग किया। सुकुमाल मुनि को स्यालनी ने सताया। सती सीता को भी दुबारा वनवास हुआ। मैं अपने बारे में सोच

ही नहीं पा रही हूँ कि मुझे जंगल में क्यों छोड़ा गया है? उसके मन में दुःख तो हुआ परन्तु वह धर्मात्मा थी, शीलवती थी, पाप–पुण्य जानती थी। कर्म किस–किस प्रकार अनुकूल–प्रतिकूल बाह्य सामग्री जुटाते हैं? जन्म–जन्मान्तर तक भी नहीं छोड़ते; जो जैसी करनी करता है, उसे वैसा भोगना पड़ता है। इस प्रकार उसे पूर्ण विश्वास था और इसी विश्वास ने उसे बल दिया, धैर्य दिया।

पुण्य के उदय से उसे महा तपस्वी अवधिज्ञानी, गुणधर मुनिराज के दर्शन हुए। उनके दर्शन कर उसने बड़ी भक्ति से उनकी वन्दना की और अपने को कृतकृत्य समझा। तदनन्तर वृषभसेना ने मुनिराज से पूछा कि हे मुनिराज ! मेरे पूर्वभव के कर्मों को बताइये, जिनके कारण मैंने ऐसा फल पाया है ?

मुनिराज अवधिज्ञानी तो थे ही, उन्होंने उसे बताया – पुत्री ! तूने पूर्वभव में एक मुनि की सेवा–शुश्रुषा की थी, उनको औषधि देकर निरोग किया था, इस कारण तूने इस जन्म में एक सेठ के यहाँ जन्म लिया तथा रानी बनी, किन्तु तूने उन्हीं मुनिराज पर अज्ञानवश क्रोध में आकर कूड़ा डाला था, उन पर शंका की थी कि ये कितने ढीट है आदि आदि। इसी कारण तेरे पति के मन में शंका हुई और तुझे इस निर्जन जंगल में छोड़ दिया गया है।

वस्तुतः जीव जो कुछ शुभाशुभभाव करता है, तदनुसार पुण्य–पापकर्म एवं संयोग प्राप्त होते हैं। यदि इस संसार की चक्रीयता से बचना है तो मिथ्यात्व और रागादि का अभाव करो, निज शुद्धात्मा की दृष्टि एवं अनूभूति करो – यही सच्चे सुख का एकमात्र उपाय है।

मुनिराज के श्रीमुख से अपने पूर्व जन्म की कथा सुनकर उसके मन में दीक्षा लेने के भाव जागृत हो गए। उसने आर्यिका माताजी से दीक्षा ले ली और घोर तपस्या करके समाधिमरण पूर्वक शरीर का त्याग कर स्वर्ग में देव हुई। **(सन्मति सन्देश से साभार)**

6 मृगध्वज और भैंसा (पाड़ा)
(देखो ! योग्यता और उदय का खेल)

श्रावस्तिनगरी में राजा जितशत्रु राज्य करता था। उसका मृगध्वज नाम का एक पुत्र था। उसी नगरी में एक कामदत्त नामक सेठ भी रहता था। वह एक दिन अपनी गायों-भैंसों को देखने आया, तब एक भैंस का बच्चा (पाड़ा) उस सेठ के पैरों में पड़ गया। तब सेठ ने ग्वाले से पूछा कि यह क्या आश्चर्य है? तब ग्वाले ने कहा कि यह भैंसा जिस दिन जन्मा, उस दिन मेरे पैरों में भी पड़ गया था। तब मुझे अति दया आई। इस कारण मैंने वन में मुनिराज को नमस्कार करके पूछा –

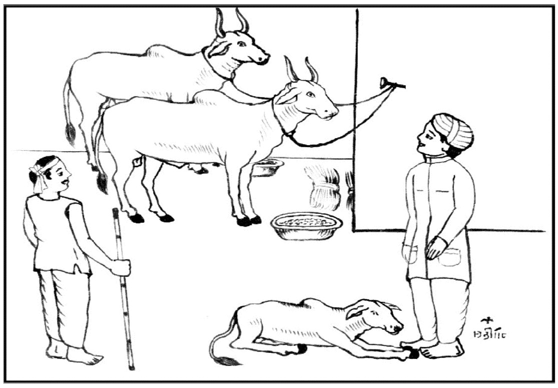

हे प्रभु ! इस भैंसे के प्रति मुझे अति करुणा उत्पन्न होती है। उसका कारण कहो ? तब मुनिराज ने कहा – हे ग्वाल ! तू सुन, तेरी इस भैंस के गर्भ से यह पाड़ा पाँच बार जन्मा और तूने इसे मारा, फिर ये छठवीं बार इसी भैंस के गर्भ से जन्मा है और तुझे देखकर पूर्व भव का स्मरण हुआ है, अतः डरकर तेरे पैरों में पड़ता है कि

''अब तू मुझे मत मारना।''

जब मुनिराज ने ऐसे वचन कहे तो मैंने इसका पुत्र की तरह पालन किया। अब भी जीने के लिये तुम्हारे पैरों में पड़ता है। ग्वाले का यह वचन सुनकर सेठ ने दया करके उस पाड़े को अभयदान दिलाया।

एक दिन पूर्वभव के बैर से राजा के पुत्र मृगध्वज ने भैंसे का एक पैर काट दिया, तब राजा ने राजाज्ञा भंग कर हिंसा के अपराध में पुत्र को फांसी की सजा दे दी। राजा का मंत्री बुद्धिमान था। वह कपट करके कुंवर को वन में ले गया और वन में मुनिराज के दर्शन करके उसे मुनिदीक्षा दिला दी। इधर भैंसा भी पैर टूटने के अठारवें दिन शुभभाव से मरा और उधर राजकुमार को मुनि होने के पश्चात् बाईसवें दिन शुक्लध्यान के प्रभाव से केवलज्ञान हुआ।

उन केवली की पूजा करने के लिये चारों प्रकार के देव और मनुष्य भी आये। राजा जितशत्रु भी आया। उसने केवली भगवान से भैंसे के बैर का कारण पूछा। तब मृगध्वज केवली भगवान की वाणी में आया कि पहला नारायण त्रिपृष्ट, उसका शत्रु अश्वग्रीव अल्कापुरी का स्वामी, विद्याधरों का ईश्वर पहला प्रतिनारायण, पृथ्वी में प्रसिद्ध उसका मंत्री हरिश्मश्री तर्क शास्त्र का पाठी नास्तिक मतवाला।

जब त्रिपृष्ट नारायण और अश्वग्रीव का युद्ध हुआ तब त्रिपृष्ट ने अश्वग्रीव को मारा और विजय नामक बलभद्र ने मंत्री हरिश्मश्री को मारा। अश्वग्रीव और हरिश्मश्री दोनों नरक में गये। चिरकाल तक भ्रमण करके अश्वग्रीव का जीव तो मृगध्वजा हुआ और हरिश्मश्री का जीव भैंसा हुआ है। पहले जन्म के दोष से कोप करके मैंने इस भैंसे का पैर तोड़ा, वह अकाम निर्जरा से लोहित नाम का महाअसुर हुआ। वह भी यहाँ आया है। अतः हे राजन् ! इस लोक में सभी जीवों के साथ मित्रभाव रखना। क्रोध जीव को अन्धा कर देता है।

इस कारण हे राजन् ! जो मोक्षाभिलाषी हैं, उन्हें क्रोध को वश करके शान्तभाव अंगीकार करना चाहिये। शान्तभाव ही शिवपद का कारण है। यह कथा सुनकर राजा आदि अनेक जीवों ने जिनदीक्षा ली और कालान्तर में केवली भगवान भी आयु पूर्ण करके अनंतकाल के लिए सिद्धालय में विराजमान हुए। ●

इसमें मेरा क्या है ?

एक जंगल में एक साधु बैठे थे, उनके पास उनका एक शिष्य भी बैठा था। उसी समय वहाँ एक व्यक्ति आया और साधु को भला-बुरा कहने लगा, अंत में वह जाते-जाते उन पर थूँक भी गया।

शिष्य ने कहा – कैसा नीच था ? दूसरे दिन वही व्यक्ति पुन: आया और माफी मांगने लगा।

साधु ने कहा – **''कल का कृत्य भी तुम्हारा था और आज का कृत्य भी तुम्हारा है, मेरा तो इसमें कुछ भी कृत्य नहीं है। कल भी नहीं था और आज भी नहीं है। तम्हारे कृत्य के मालिक तुम्हीं हो।''**

उसने कहा – क्षमा करें प्रभो, मुझ मूर्ख की समझ में कुछ नहीं आया, अत: कृपया थोड़ा विस्तार से उदाहरण देकर समझाकर अनुगृहीत करें।

साधु ने कहा – **हम दूसरे के कृत्य को अपने से जोड़ लेते हैं – यह गल्ती हमारी है। यदि हम उसे अपने साथ नहीं जोड़ें तो वह कृत्य उसी का है।**

जैसे – किसी ने कपड़ा खूँटी पर टांगा, कपड़ा उसी का है, खूँटी का नहीं। जब वह उतारता है तब भी उसी का है। अच्छा कपड़ा टांगा तब भी उसी का है। बुरा कपड़ा टांगा तब भी उसी का है। मैला कपड़ा टांगा तब भी उसी का है। साफ कपड़ा टांगा तब भी उसी का है। खूँटी का तो कपड़ा होता नहीं है।

अब समझा, इसी प्रकार **साधु तो बीच में खूँटी का काम कर रह थे, यदि हम भी अपनी मान्यता ऐसी कर लें तो हमें भी क्रोधादि होंगे ही नहीं ।** – तू सूर्य नहीं किरण है से साभार

➤ हमारे प्रकाशन ➤

चौबीस तीर्थंकर पुराण	(हिन्दी)	75/-
चौबीस तीर्थंकर पुराण	(गुजराती)	50/-
शिवपुर के राही (मल्टीकलर)	(श्री कानजीस्वामी का जीवनदर्शन)	50/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-1	(लघु कहानियाँ)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-2	(सगर चक्रवर्ती, वज्रवाहु, सुकौशल)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-3	(ब्रह्मगुलाल, अंगारक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-4	(श्री हनुमान चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-5	(श्री पद्म (राम) चरित्र)	25/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-6	(अकलंक-निकलंक नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-7	(अनुबद्ध केवली श्री जम्बूस्वामी)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-8	(8 अंग और 5 अणुव्रतों की कथा)	20/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-9	(शासन नायक श्री वर्द्धमान चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-10	(सुभौम चक्रवर्ती, अमरकुमार नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-11	(सती अनंगसरा,निमित्त-उपादान नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-12	(बालि मुनिराज,महारानी चेलना नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-13	(यशोधर मुनिराज, धन्यकुमार कथा)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-14	(नाटक-राजा श्रीकंठ, पुण्यप्रकाश...)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-15	(बंधुश्री एवं लुब्धक सेठ)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-16	(सती मनोरमा एवं पं. टोडरमल नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-17	(प्रद्युम्नकुमार,जयकुमार,सूर्यमित्र कथा)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-18	(सेठ सुदर्शन, दीवान अमरचंद नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-19	(षट् लेश्या, श्री जीवंधर चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-20	(श्री वरांग चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-21	(श्री गुरुदत्त चरित्र,सम्यक्त्वलीला नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-22	(श्री सुकमाल चरित्र, मृगध्वज कथा)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-23	(श्रीकृष्ण, चंदनवाला कथा)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-24	(उपसर्गजयी संजयंतमुनि, राजा श्रेणिक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-25	(कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य कुन्दकुन्ददेव)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-26	(बाईस परीषह : संवाद के रूप में)	30/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-27	(तू किरण नहीं सूर्य है)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-28	(लघु कहानियाँ, एकांकी नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-29	(भरत से भगवान : एक जीवनयात्रा)	20/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-30	(भगवान पार्श्वनाथ चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-31	(भगवान नेमिनाथ चरित्र)	20/-

हमारे प्रेरणा स्रोत : ब्र. हरिलाल अमृतलाल मेहता

जन्म
ई.सन् १९२४
पौष सुदी पूनम
जैतपुर (मोरबी)

देहविलय
८ दिसम्बर, १९८७
पौष वदी ३, सोनगढ़

सत्समागम
ई.सन् १९४३
अषाड़ सुदी दोज
राजकोट

ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा
ई.सन् २२.२.१९४७
फागण सुदी १
(उम्र २३ वर्ष)

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के अंतेवासी शिष्य, शूरवीर साधक, सिद्धहस्त, आध्यात्मिक, साहित्यकार **ब्रह्मचारी हरिलाल जैन** की 19 वर्ष में ही उत्कृष्ट लेखन प्रतिभा को देखकर वे सोनगढ़ से निकलने वाले आध्यात्मिक मासिक **आत्मधर्म** (गुजराती व हिन्दी) के सम्पादक बना दिये गये, जिसे उन्होंने 32 वर्ष तक अविरत संभाला। पूज्य स्वामीजी स्वयं अनेक बार उनकी प्रशंसा मुक्त कण्ठ से इस प्रकार करते थे-

''मैं जो भाव कहता हूँ, उसे बराबर ग्रहण करके लिखते हैं, हिन्दुस्तान में दीपक लेकर ढूँढने जावें तो भी ऐसा लिखने वाला नहीं मिलेगा...।''

आपने अपने जीवन में करीब 150 पुस्तकों का लेखन/सम्पादन किया है। आपने बच्चों के लिए **जैन बालपोथी** के जो दो भाग लिखे हैं, वे लाखों की संख्या में प्रकाशित हो चुके हैं। अपने समग्र जीवन की अनुपम कृति **चौबीस तीर्थंकर भगवन्तों का महापुराण**–इसे आपने 80 पुराणों एवं 60 ग्रन्थों का आधार लेकर बनाया है। आपकी रचनाओं में प्रमुखतः आत्म-प्रसिद्धि, भगवती आराधना, आत्म वैभव, नय प्रज्ञापन, वीतराग-विज्ञान (छहढ़ाला प्रवचन, भाग 1 से 6), सम्यग्दर्शन (भाग 1 से 8), अध्यात्म-संदेश, भक्तामर स्तोत्र प्रवचन, अनुभव-प्रकाश प्रवचन, ज्ञानस्वभाव-ज्ञेयस्वभाव, श्रावकधर्मप्रकाश, मुक्ति का मार्ग, मूल में भूल, अकलंक-निकलंक (नाटक), मंगल तीर्थयात्रा, भगवान ऋषभदेव, भगवान पार्श्वनाथ, भगवान हनुमान, दर्शनकथा, महासती अंजना आदि हैं।

2500वें निर्वाण महोत्सव के अवसर पर किये कार्यों के उपलक्ष्य में, जैन बालपोथी एवं आत्मधर्म सम्पादन इत्यादि कार्यों पर अनके बार आपको स्वर्ण-चन्द्रिकाओं द्वारा सम्मानित किया गया है।

जीवन के अन्तिम समय में आत्म-स्वरूप का घोलन करते हुए समाधि पूर्वक **''मैं ज्ञायक हूँ...मैं ज्ञायक हूँ''** की धुन बोलते हुए इस भव्यात्मा का देह विलय हुआ-यह उनकी अन्तिम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता थी।